शुभदा

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

सन्मार्ग प्रकाशन
16, यू० बी० बैंग्लो रोड, दिल्ली-110007

प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन
16, यू० बी० बंग्लो रोड, दिल्ली-110007
अनुवादक : रमेश दीक्षित
दूसरा संस्करण : 1977
मूल्य : बारह रुपये (Rs. 12.00)
मुद्रक : प्रिंट आर्ट,
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

पहला अध्याय

कृष्णप्रिया देवी गले तक पानी में खड़ी होकर गंगाजी में स्नान कर रही थीं। आँख और नाक बन्द करके उन्होंने तीन बार जल में डुबकियाँ लगाईं; पीतल के घड़े मे जल भरते-भरते बोली—'नसीब जब फूटता है तब इसी तरह फूटता है।'

घाट पर तीन-चार स्त्रियाँ और भी स्नान कर रही थीं। सब आश्चर्य-चकित होकर उनके मुँह की ओर देखती रह गईं। अपनी विवादप्रियता के लिए कृष्णप्रिया पूरे गाँव में प्रसिद्ध थीं। साहस करके उनसे कोई बात पूछना या उनकी किसी बात का उत्तर देना कोई सरल काम नही था। एक बात और थी, उस समय वहाँ जो भी स्त्रियाँ नहा रही थी, वे सभी आयु मे उनसे छोटी थी, उनसे विवाद करना उचित नहीं समझती थी।

'विन्दो, यही मैं कह रही हूँ कि मनुष्य के भाग्य जब फूटते है तब इसी तरह फूटते है।'

यह बात जिस भाग्यवती को सुनाकर कही गई थी, उसका नाम था विन्ध्यवासिनी, लेकिन घर तथा पास-पडोस के लोगो में वह विन्दो के ही नाम से प्रसिद्ध थी। धनी परिवार मे विन्दो ने जन्म लिया था। धनवान् घर की ही वह बहू हुई। आजकल वह मायके आई हुई थी।

विन्दो ने ताड लिया कि यह बात मेरे ही सम्बन्ध मे कही गई है, इसलिए साहस करके उसने कहा—'क्यों बुआजी?'

'यही हाराण मुकर्जी की बात याद आ गई। मानो भगवान् उन लोगो के पैर खीचकर उन्हे डुबा रहे है।'

विन्ध्यवासिनी ने जान लिया कि हाराण मुकर्जी की दुरावस्था की बात हो रही है। इससे वह भी दुखी हुई। लगभग एक मास हुआ, हाराण के पाँच-छः वर्ष के एक लड़के की मृत्यु हो गई थी। उस घटना को याद

कर उसने कहा—'जब भगवान् ने ही छीन लिया, तब उसमें किसका वश था ? इसके सिवा जन्म और मृत्यु से किसका घर बचा है।'

पहले तो विन्ध्यवासिनी की बात कृष्णप्रिया ठीक-ठीक समझ नही पाई। कुछ देर बाद वे बोली—'आहा ! महीना भर हुआ, उनका बच्चा भी मर गया है, लेकिन उसके विषय में मैं नही कह रही हूँ विन्दो; जिन्दगी और मौत तो भगवान् के हाथ की बात है। मैं तो दूसरी ही बात कह रही हूँ। बिटिया ! शायद तुमने कुछ सुना नही ?'

विन्ध्यवासिनी कुछ बोली नही। वह केवल उनके मुँह की ओर देखती रह गई।

फिर कृष्णप्रिया बोली—'हाराण मुकर्जी का हाल शायद तुमने सुना नही ?'

विन्ध्यवासिनी ने पूछा—'उनका और क्या समाचार है ?'

'अहा ! वही तो बता रही थी बिटिया कि भगवान् जब मारते हैं, इसी प्रकार मारते हैं। लेकिन उस भाग्यहीन के लिए तो मन दुखी नही होता लेकिन जो कुछ दु.ख होता है वह सोने की प्रतिमा-जैसी उसकी बहू की याद आने पर होता है।'

पहले की ही तरह विन्दो उनका मुँह देखती रह गई, उसकी समझ मे कोई विशेष बात नही आई। लेकिन कृष्णप्रिया के मुँह से जो इतनी बातें निकली थी, वे निरर्थक नही प्रमाणित हुईं। जिस आशय से उन्होंने मूल बातो को छिपाकर डालियों और पत्तियों को हिलाया था, वह सिद्ध हो गया। घाट पर उपस्थित होने के कारण जिस किसी ने भी इस बात को सुना, उसी के विस्मय और कौतूहल की सीमा न रही। सभी के दिल मे यह बात आने लगी कि हाराण मुकर्जी के विषय की ऐसी कौन-सी बात हो सकती है जिसका मुझे पता नही है, और गाँव के दूसरे लोगों को मालूम है।

कुछ देर तक सोच-विचार करने के बाद विन्दो ने कहा—'बुआजी, 'कौन-सी ऐसी बात है ? क्या मैं भी उसे सुन सकती हूँ ?'

'सुन क्यो नही सकती हो ? लेकिन बात कोई सुखदायक तो है नही, इसी से उसे दोहराने का मन नही होता। जिस समय वह याद आती है,

हृदय में तीर-सा चुभने लगता है। हाय! भगवान् ने इस तरह की लडकी के भाग्य में भी इतना दुःख लिख रक्खा है।'

'किस बात का कष्ट ?'

'पूछती हो कि कष्ट किस बात का है। कितनी तरह के कष्ट उसे मिल रहे हैं। कितनी तरह की मुसीबतें वह सहन कर रही है, यह मैं तुम लोगों को कहां तक समझाऊँ ?'

'तब भी तो कुछ सुनूं बुआजी ?'

'नहीं, इस समय जाने दो इन बातों को। छिपा तो कुछ न रह सकेगा। बात सब लोगों को मालूम हो जायगी। बहुतों को तो वह मालूम भी हो चुकी है। तुम लोगों के कानों में भी पड़े बिना वह न रह सकेगी। यह दूसरी बात है कि पहले पड़े या बाद को।'

'तुम्ही क्यों नहीं बतला देती हो ?'

'नहीं, मैं न बताऊँगी। सोचती हूँ कि दूसरे की बात में पडना ठीक नहीं है।'

विन्दो ने हँसकर कहा—'बुआजी, हम लोग क्या तुम्हारे लिए पराये हैं ? मुझे विश्वास है कि तुम मुझसे यह बात छिपा न रक्खोगी।'

'गंगाजी में खडी होकर क्या मैं झूठ बोलूंगी ?'

'क्या आवश्यकता है झूठ बोलने की ? क्या मैं तुमसे झूठ बोलने को कह रही हूँ ?'

'तब मैं कैसे बतलाऊं ? अभी तो गंगाजी में खड़ी-खडी मैं कह चुकी हूँ कि दूसरों की बात में न पड़ूंगी।'

कलह से अत्यधिक प्रेम रखने वाली कृष्णप्रिया जब चली गईं तब घाट पर जितनी स्त्रियाँ उपस्थित थी, वे सभी एक दूसरे की तरफ देखने लगी। बात किसी की समझ में न आयी। उन सबके आश्चर्यचकित होने का एक कारण और भी था। आज तक उनमे से किसी के सामने ऐसा मौका कभी नहीं आया था कि कृष्णप्रिया ने कोई बात कही हो और उसे समाप्त किये बिना उन्होंने छोड़ दी हो। खैर, स्नान से निपट कर वे सब अपने-अपने घर की तरफ चली। विन्दो भी लौटकर घर आई। सूखा कपड़ा पहनकर वह माँ के पास जाकर बैठी।

माँ ने कहा—'बिन्दो, अभी तक तुम नहाती रही हो ! बिटिया, देर तक जल मे रहने से कही तबीयत खराब हो गई तो ?'

बिन्दो—'तो होगा क्या ? चारपाई पर ही दो दिन पडी रहूँगी।'

माँ ने हँसकर कहा—'तो यह कहो कि बीमार पडने पर तुझे आराम ही मिलेगा, चाहे तेरे कारण दूसरों को भले ही दु ख भोगना पड़े ।'

बिन्दो ने कहा—'हाराण मुकर्जी को फिर क्या हो गया माँ ?'

माँ—'जो होना था वही हुआ। अब होगा क्या ?'

बिन्दो—'आज घाट पर कृष्णा बुआ कुछ इस प्रकार की बातें कर रही थी कि जैसे उनके यहाँ पुत्र की मृत्यु के बाद कोई नई दुःखदायक घटना हुई है। क्या तुमने कुछ सुना नही ?'

माँ—'मैंने तो कुछ सुना नही। कृष्णा क्या कह रही थी ?'

बिन्दो—'वे कह रही थी कि भगवान् हाराण मुकर्जी को पैर खीचकर उन्हें डुबो रहे हैं। लेकिन उस भाग्यहीन पुरुष की अवस्था पर मुझे दु.ख नही होता, दु ख होता है सोने की प्रतिमा-जैसी उसकी बहू के कारण। केवल इतना ही उनके मुह से निकला है और अधिक वे कुछ नही बोली। आग्रह करने पर उन्होंने कहा कि दूसरे की चर्चा मैं न करूँगी।'

माँ—'तो इतने दिनों के बाद देवीजी के हृदय मे धर्म का ज्ञान पैदा हुआ है।'

बिन्दो—'माँ, क्या सचमुच ही तुम्हें कुछ मालूम नही ?'

माँ—'कुछ भी नही।'

बिन्दो—'तो आज मैं दोपहर को अवश्य उनके घर जाऊँगी।'

माँ—'क्यों ? क्या यह जानने के लिए कि कौन-सी दुर्घटना उनके यहाँ हुई है ?'

बिन्दो—'हाँ।'

माँ—'क्या तुझे कुत्ते ने काटा है ? जिस झमेले में पडने की उनकी इच्छा नही हुई, उसके विषय मे जानने के लिए तू जायगी ?'

बिन्दो—'उनकी किनकी ?'

बिन्दो की माँ ने कुछ इधर-उधर करके कहा, 'उन्ही कृष्णप्रिया देवी की।'

विन्दो—'क्या कृष्णप्रिया देवी आदर्श है कि वे जो कुछ न करें, वह किसी को भी नही करना चाहिए ?'

माँ—'इन सब विषयों मे तो वह एक तरह से आदर्श ही है।'

विन्दो—'वे होगी आदर्श। आज मैं तो जाऊँगी।'

माँ—'दूसरे के मामले मे न पडोगी तो क्या कोई हानि होगी ?'

विन्दो—'अच्छा माँ, यदि एक आदमी डूब रहा है तो यह सोचकर कि दूसरे के मामले में कौन पड़े, उसे बचाने के लिए प्रयत्न न करना चाहिए ?'

माँ—'लेकिन तू तो बचाने के ख्याल से नही जा रही है विन्दो ?'

विन्दो—'कौन डूब रहा है, यह बात जब मालूम हो जायगी तब मैं क्यों नही जाऊँगी ?'

विन्दो की माँ के मुँह से कुछ देर तक कोई बात नही निकली। बाद को उन्होंने कहा—'बिटिया, वहाँ तुम्हारे जाने की आवश्यकता नहीं। हाराण मुकर्जी भला आदमी नहीं है। तुम्हारे पिता से उनकी दुश्मनी है। उनके घर में तुम्हारा जाना क्या अच्छा लगेगा ?'

विन्दो—हाराण मुकर्जी भला आदमी नही है, यह मैं जानती हूँ। लेकिन क्या मैं उसके पास जा रही हूँ ? उसकी स्त्री के पास जाने मे क्या आपत्ति है ? मुझे साफ दिखाई पड रहा है कि वे लोग किसी-न-किसी मुसीबत मे फँसे हुए है। ऐसी दशा में पास-पडोस मे रहते हुए भी यदि हम लोग उनकी तरफ से आँखें बन्द कर रखेंगे तो ससुराल में मेरा कोई मुँह न देखेगा।'

माँ—'अघोरनाथ ने क्या तुझसे यह कह रक्खा है कि गाँव मे घूम-घूम कर यह देखती रहना कि किसके घर मे क्या हो रहा है और अगर तुम हाराण मुकर्जी का समाचार न जान सकोगी तो क्या वे तुम्हारा मुँह न देखेंगे ? इधर मैं माँ होकर जो करने लिए तुझे रोक रही हूँ उसे किये बिना क्या तेरा निर्वाह नही है ? क्या तुझे मेरी बात नही माननी चाहिए ?'

विन्दो—'नही माँ मुझे वहाँ जाना ही चाहिए।'

माँ—'जाकर तू क्या मालूम करेगी ? हाराण मुकर्जी को क्या हुआ है, इसकी क्या घर में किसी को जानकारी नही है ?'

विन्दो—'तुमने किस तरह जाना ?'

माँ—'तुम्हारे बाबू जी ने मुझे बतलाया है।'

विन्दो—'तो मुझे क्यो नही बतलाती हो कि क्या हुआ ?'

माँ—'नन्दी महोदय के यहाँ कुछ गबन किया है, इसलिए उन्होने हाराण मुकर्जी को पुलिस के हवाले कर दिया है।'

विन्दो—'कौन हैं नन्दी महोदय ?'

माँ—'ब्राह्मणपाडा के जमीदार हैं। हाराण मुकर्जी उन्ही की रियासत मे काम किया करता था।'

विन्दो—'गबन कितने रुपये का किया है ?'

माँ—'दो सौ रुपये के करीब ?'

विन्दो—'किसी ने जमानत नही की ?'

माँ—'जमानत करेगा कौन ? गाँव मे केवल तुम्हारे बाबूजी को सब लोग जानते है। वे ही एक ऐसे आदमी हैं जो जमानत कर सकते है। लेकिन उस अभागे ने तो इन्हें दुश्मन बना रक्खा है। इनसे एक बार जमानत करने के लिए कहा भी, लेकिन इन्होने इन्कार कर दिया।'

विन्दो कुछ देर मौन भाव से सोचती रही। बाद को उसने कहा—'जरा देर के लिए दोपहर मे मैं उनके यहाँ जाऊँगी। जब से आई हूँ, तब से एक बार भी उनकी बहू ने भेंट नही की।'

विन्दो की माँ अवाक् हो उठी। गुस्से के साथ उन्होने कहा—'इतनी बातें सुन लेने के बाद भी तू जायगी !'

विन्दो ने बहुत ही सरल और स्वाभाविक ढङ्ग से सिर हिलाकर कहा—'हाँ, माँ !' और कुछ कह न सकी। कुछ देर मौन रहने के बाद विन्दो ने फिर कहा—'उनके यहा मेरे जाने के कारण किसी को किसी प्रकार की हानि न होगी। मेरा तो यह कहना है माँ कि पुरुषों मे यदि कुछ झगडा हो जाय तो औरतों का उससे दूर रहने में ही भला है।'

देर होते देखकर माँ उठ गई। चलते समय उन्होंने कहा—'वे सुनेंगे तो बहुत कुपित होंगे।'

विन्दो—'मैं ऐसी तरकीब से जाऊँगी कि बाबू जी को मालूम ही न हो सकेगा।'

माँ—'उन्हें मालूम हुए बिना न रह सकेगा।'

बिन्दो—'तुम कह दोगी तो मालूम हो ही जायेगा।'

माँ—'लेकिन यह बात मालूम होने पर वे नाराज बहुत अधिक होंगे।'

बिन्दो ने अन्यमनस्क भाव से कहा—'माता-पिता संतान से नाराज होते हैं, लेकिन उनका गुस्सा स्थायी नहीं होता। थोड़ी ही देर में उस अप्रिय बात को भूल जाते हैं। इसके लिए तुम चिन्ता न करो।'

२

हलुदपुर नाम का एक गाँव है। यह जिस जिले के अन्दर है, उसका जिक्र करके किसी के दिल को दुखाना अच्छा नहीं। यह कोई ऐसी जगह तो है नहीं, जहाँ किसी को जाने की आवश्यकता पड़ेगी। यहाँ देखने-सुनने योग्य कोई चीज नहीं है, तो भी अगर किसी के दिल में इसका पूरा पता जानने के लिए प्रबल आग्रह हो तो नीचे लिखे हुए विवरण के आधार पर बहुत कुछ मालूम कर सकते हैं।

सुनने में आया है कि इस गाँव मे पहले कई बहुत समृद्ध परिवार थे। गाँव के आस-पास जो निशान हैं, उनके कारण यह बात सच भी मालूम पड़ती है। एक तो यह गाँव गंगा जी के कगार पर बसा हुआ है, दूसरे यहाँ शिवजी के दो-चार बहुत प्राचीन मन्दिर हैं। ये मन्दिर टूटे-फूटे हैं और बस्ती से बिल्कुल बाहर हैं। बेत के वन तथा मलोय की झाड़ियों में प्रायः अपना आधा भाग छिपाये हुए देखने में ऐसे जान पड़ते हैं, मानो ये मौनव्रत-धारी योगी हैं और वन में बैठे तपस्या कर रहे हैं। वहाँ दो-एक तालाब भी हैं जिनके घाट बँधे हुए हैं। लेकिन अब वे वैसी हालत में नहीं हैं कि उनमें सदा निर्मल जल भरा रहे। लगातार मिट्टी गिरते-गिरते तालाब भर गये हैं, इससे प्रायः वर्षा के अन्त होते ही वे सूखकर मैदान के रूप में बदल जाते हैं और उनमें पशु चरने लगते हैं।

ऊपर के वर्णन से यह साफ ही जाहिर होता है कि इस गाँव की दशा सदा ऐसी ही नहीं रही। लेकिन आज यहाँ केवल ब्राह्मणों और कायस्थों

के दस-बीस घर है। और उन्ही के आश्रय में शूद्रों के भी पचास-साठ झोंपडे है। गाँव के चारों ओर सिर्फ झाड़ियाँ और जंगल है। बीच-बीच में दो-एक पगडण्डियाँ भी दिखाई पड जाती हैं।

श्रीयुत हाराण चन्द्र मुकर्जी का घर भी इसी गाँव मे है। यह घर पुराना है, ईंट का बना हुआ है। दो कमरे ऊपर के हिस्से मे और चार-पाँच कमरे नीचे है। घर के चारों तरफ बाँस की कोठरियाँ हैं, दो-चार केले के पेड लगे हुए हैं, दो बेल के पेड है, दो आम के पेड हैं और एक कैथा का पेड है। यही मुकर्जी का निवास-स्थान है और यही उनकी जायदाद है।

हलुदपुर से आधा कोस की दूरी पर ब्राह्मणपाडा नाम का गाँव है। वहाँ के जमीदार नन्दी महोदय के दरबार में हाराण चन्द्र नौकर थे, बीस रुपया माहवार तनख्वाह पाते थे। लेकिन उनके घर का खर्च आसानी से नही चल पाता था। सदा ही हाथ तंग रहा करता, सदा ही किसी-न-किसी वस्तु की जरूरत बनी रहती थी।

हाराण चन्द्र के घर में खाने वाले भी कई प्राणी थे। उनकी स्त्री थी, दो पुत्र थे, दो कन्याएँ थी और एक विधवा बहिन थी। इस प्रकार उनका एक काफी बडा परिवार था। लेकिन पहले जब वे महीने के अन्त मे बीस रुपये ले जाकर स्त्री के हाथ पर रख देते तब आजकल की तरह किसी को यह जानने का मौका न मिलता कि उनके परिवार का खर्च मुश्किल मे चलता है, रोज ही किसी-न-किसी चीज की कमी बनी रहती है। उनकी स्त्री और बडी बहन मिलकर गृहस्थी का काम-काज बडे हिसाब से चलाती जाती थी। लेकिन अब हाराण बाबू ऐसा नही करते। इससे उनकी गृहस्थी मे दरिद्रता का आसन भी प्राय: अटल रहा करता है। आज चावल नहीं है तो कल दाल नही है। परमों लकड़ी के अभाव के कारण चूल्हा नहीं जल सका। इस तरह आज यह नही है, आज वह नही है, यह सुनते-सुनते मुकर्जी महाराज की तबियत ऊब गई और उन्होंने अनुचित उपाय का सहारा लेकर आर्थिक संकट से मुक्ति प्राप्त करने का निश्चय किया।

तहसील-वसूल का काम हाराण चन्द्र के हाथ मे था इससे सरकारी रुपयों मे से थोड़ा-थोड़ा निकालकर वे अपने काम मे लगाने लगे। जमींदार

के वे विश्वासपात्र व्यक्ति थे, इससे पहले कुछ दिनों तक उन पर कोई शंका न कर सका। लेकिन सदा ही तो किसी की आँख में भूल झोंकी नहीं जा सकती। धीरे-धीरे उनके प्रति अविश्वास का भाव उत्पन्न होने लगा। आखिर में वह भाव इतना प्रबल हो उठा कि नन्दी महोदय उन पर निर्भर न रह सके, उनके कागज-पत्र मँगवा कर उन्होंने सारा हिसाब मिलाया। हिसाब में भूलों की भरमार थी। गबन के भी काफी तथ्य मिल गये। इस बीच में हाराण बाबू बहुत-सा रुपया खा चुके थे।

जमींदार श्री भगवान् नन्दी बड़े ही दयालु और कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। वे किसी के साथ यथासम्भव कठोर व्यवहार नहीं करते थे। हाराण चन्द्र को बुलाकर उन्होंने पूछा—'तुमने कितने रुपये खा डाले हैं?'

'मुझे नहीं मालूम।'

'तुम्हे मालूम ही नहीं? हिसाब-किताब देखने से मालूम पड़ता है कि तीन हजार से अधिक रुपये खा गये हो। क्या किया उन सब रुपयो का?'

'खर्च मे आ गये।'

'खर्च तो कर डाले तुमने। लेकिन चोरी क्यों की?'

बीस रुपये से निर्वाह नहीं होता था, इससे चोरी के सिवा और उपाय ही क्या था?'

'लेकिन इन्हीं बीस रुपयों से आज तक तुम्हारा निर्वाह होता आया था। अब कैसे नहीं होता? कोई ऐसा कारण तो मेरी समझ मे नहीं है। इसके सिवा यदि तुम्हें आर्थिक दुःख होता था तो मुझसे कहना चाहिए था। चोरी तुमने क्यों की?'

'कहने पर क्या आप मुझे अधिक रुपये दे देते?'

'मुमकिन था कि मैं तुम्हारी तनख्वाह कुछ बढ़ा देता। लेकिन अब तो कुछ सवाल ही नहीं रहा। तुमने जितने रुपये चुराये है, उनका आधा भी अगर तुम दे सको तो मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूँ।'

'रुपये कहाँ से दे सकता हूँ? मेरे पास कुछ है भी तो नहीं।'

'अगर तुम्हारे पास कुछ जमीन-जायदाद हो तो उसे ही बेचकर तुम रुपया दे दो।'

'जो एक झोंपड़ी है रहने के लिये, उसे ही बेचकर जो कुछ मिले वसूल

कर लीजिये।'

'उस दशा में तुम्हारे स्त्री-बच्चे रहेंगे कहाँ ?'

'पेड़ के नीचे रहेंगे।'

भगवान् बाबू बहुत देर तक हाराण चन्द्र के मुँह की तरफ देखते रहे। बाद को उन्होंने कहा—'तुम्हारी आँखें लाल क्यों है ?'

'मुझे नही मालूम क्यों ?'

अब उन्होंने हाराण चन्द्र को विदा कर दिया और अपने एक कर्मचारी को बुलाकर उन्होंने कहा—'क्या तुम हाराण मुकर्जी के घर का हाल मालूम कर सकते हो ?'

'किस तरह का हाल आप जानना चाहते हैं ?'

'यही कि उनकी पारिवारिक दशा कैसी है, कुछ सम्पत्ति आदि उनके पास है या नही और वे किसी के ऋणी है या नहीं ?'

उस कर्मचारी को हाराण बाबू का बहुत-सा हाल मालूम था। इससे उसने कहा—'जहाँ तक मैं जानता हूँ मुकर्जी महाराज की दशा अच्छी नही है। सम्पत्ति भी शायद उनके पास कुछ नही है। लेकिन उन पर किसी का कुछ ऋण वगैरह है या नहीं; यह बात मैं नही बतला सकता।'

'अच्छी तरह खबर लगा कर मुझसे बतलाना।' दो दिन के बाद उस कर्मचारी ने बाबू साहब को बतलाया कि मुकर्जी महाराज की आर्थिक दशा अत्यन्त ही शोचनीय हो गई है। बाकी चीजों के विषय में मैंने जो कुछ बतलाया था, वह सब बिल्कुल सत्य है।

भगवान् बाबू ने पूछा—'मुकर्जी क्या कुछ नशा आदि किया करते है।'

'जी हाँ, वे गाँजा पीते हैं।'

'यही कारण है कि उस दिन उनकी आँखें लाल-लाल दिखाई दे रही थी। क्या कोई अमानुषिक दोष भी उनमे है ?'

कर्मचारी ने नीचे की ओर मुँह किये हुए कहा—'सुनता तो हूँ।'

'तब तुम एक काम करो। कल अदालत मे जाकर उसके नाम गबन का दावा दायर कर दो। साथ ही पुलिस मे इसकी खबर दे दो।'

अन्त मे परिणाम यह हुआ कि हाराण महाराज को पुलिस के द्वारा गिरफ्तार होकर हवालात में जाना पड़ा। समीप होने पर भी हलुदपुर में

यह बात प्रायः कोई भी न जान सका, लेकिन विन्दो के पिता भवतारण गाँगुली को यह मालूम था। शायद नन्दी महोदय ने ही इस घटना की सूचना दी थी। वे एक प्रतिष्ठित और प्रभावशाली व्यक्ति थे। यदि वे चाहते तो हाराण चन्द्र को उसी समय हवालात से छुडा सकते थे। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं किया। हाराण चन्द्र के और कोई सहायक या साधन था नहीं, इससे वे हवालात में पड़े-पडे सड़ते रहे। हाँ, एक प्रश्न है। वह यह कि कलह के लिए निरन्तर कटिवद्ध रहने वाली कृष्णप्रिया को यह बात कैसे मालूम हो गई ? इस प्रश्न का उत्तर तो केवल वे दे सकती थीं और किसी व्यक्ति को इसका भास तक नहीं हो सका।

बैसाख का दोपहर है। आकाश पर काले-काले बादल छाये हुये हैं। इससे प्रायः अंधेरा होता आ रहा है। ऐसे समय में हाराण बाबू के रसोई-घर के बरामदे मे उनकी स्त्री और ज्येष्ठ कन्या ललना एक दूसरी की ओर मुँह किये हुई बैठी है। उन दोनों का मुंह सूखा हुआ है। आज एकादशी है। ललना बाल-विधवा है। इससे उसके भोजन का कोई प्रश्न ही नहीं है और उसकी माता ? उन्होंने भी अभी तक मुँह में कुछ नहीं डाला।

ललना ने कहा—'माँ, शायद आज भी बाबूजी नहीं आवेंगे। बादल बराबर चढते आ रहे है। अगर कही वर्षा होने लगी तो रसोईघर मे पैर रखने तक की जगह न रह जाएगी। तुम कुछ खा क्यों नहीं लेतीं।'

ललना की माँ ने कहा—'तनिक और देख लूँ। तीन दिन से वे नहीं आये, सम्भव है आज आ ही जाएं।'

'माँ, बाबू जी ऐसा तो और कभी नहीं किया करते थे। तीन दिन से वे नहीं आये। अगर आज भी न आवें ?'

'तब क्या कर सकती हूँ ? भगवान् ही हैं।'

एकादशी के दिन रासमणि (राराण बाबू की बड़ी बहन) विलम्ब से स्नान-पूजा किया करती थी। जिस समय माँ-बेटी मे ये बातें हो रही थी, उसी वक्त नित्य क्रिया से छुट्टी पाकर माला फेरती-फेरती वे भी आ पहुँची और चिल्लाकर बोली—'बहू, अभी तक खाया नहीं तुमने ?' बहू ने खिन्न भाव से कहा—'तनिक और देख लूँ।'

'देख लो मेरा सिर ! और देखकर क्या करोगी ? वह बदमाश क्या

आज इस वक्त लौटकर आवेगा ? गाँजे के नशे में वह चूर किसी रण्डी-मुण्डी के घर पड़ा होगा।'

व्रत के दिन रासमणि के स्वभाव में बहुत कुछ चिड़चिड़ापन आ जाया करता था। उनकी उपर्युक्त बात के उत्तर में जब किसी के मुँह से कुछ न निकला, तब वे और कुपित हो उठीं और बोलीं—'वह मुँहजला कब मरेगा कि हमारी छाती की आग बुझेगी।'

इस बार ललना न सह सकी। दुःखित भाव से बोली—'बुआजी एकादशी के दिन शाप क्यों दे रही हो ?'

'एकादशी के दिन शाप क्यों दे रही हो' यह बात रासमणि के हृदय में जाकर चुभ गई। भाई के सम्बन्ध में इस तरह की अशुभ बात मुँह से निकल जाने के कारण वे मन-ही-मन बहुत दुःखी हुईं, साथ ही उन्होंने लज्जा का भी कम अनुभव नहीं किया। लेकिन अभी कल की छोकरी ललना इस तरह की बात उन्हें कह गई; इससे उनकी क्रोधाग्नि अधिक वेग से भभक उठी। उन्होंने कहा—'अभी कल तू मेरे सामने पैदा हुई है आज मुझे एकादशी-द्वादशी सिखाने आई है ! बूढ़ी हो गई मैं, इतना भी नहीं जानती हूँ ? तेरा ही बाप है वह, मेरा कुछ नहीं है क्या, मुझे ममता न होगी ?'

इतना सब कहते-कहते रासमणि की आँखें भर आईं। दुःखी भाव से वे कहने लगीं—'भैया मेरा तीन दिन से घर नहीं आया। उसके लिए मेरा हृदय कितना दुःखी हो उठा है, यह मेरे इष्ट देवता ही जान सकते हैं।' इतना कहकर रासमणि ने अंचल से दो बूंद आँसू पोंछ डाले और वे कहने लगीं, 'मेरी बुढ़ापे की अवस्था है, क्रोध में आती हूँ तो कुछ कह बैठती हूँ। लेकिन तुम लोगों से जरा भी नहीं सहा जाता। आँख में अंगुली घुसेड़कर भूल दिखलाने तथा चार बातें सुनाने के लिए सदा तैयार रहा करती हो। कोई मतलब नहीं भैया, मैं तुम लोगों की बातों में न पड़ूँगी। लेकिन खाये बिना वह सूख-सूखकर काँटा होती जा रही है; इसीलिए दो बात मुँह से निकालनी ही पड़ती है।'

ललना को बहुत ही दुःख हुआ। उसे यह नहीं मालूम था कि मेरी इस एक बात का इतना गम्भीर अर्थ निकाला जा सकता है और इसके कारण अश्रुपात भी हो सकता है। उसने कहा—'बुआजी, मुझसे भूल हो गई, अब

इस तरह की बात मुंह से न निकलने दूंगी।'

वास्तव में ललना ने बुआ को इतनी तीखी बात कह अनुचित कार्य किया था। उसकी माता ने कहा—'बिटिया, अब तुम बड़ी हो गई हो, तुम्हें सोच-समझकर हर एक बात मुंह से निकालनी चाहिए।'

इस तरह की बातचीत के बाद पुत्री और ननद के आग्रह करने पर ललना की माता ने कुछ खाना खाया। उसके बाद ही अपनी पाँच वर्ष की कन्या प्रमिला की अँगली पकड़े हुए विन्ध्यवासिनी ने हाराण बाबू के घर में प्रवेश किया।

सामने ही रासमणि खड़ी हुई थी। विन्ध्यवासिनी की ओर दृष्टि जाते ही उन्होंने कहा—'विन्दो तो भाई, अब इस ओर कभी दिखाई ही नहीं देती।'

विन्दो दबने वाली स्त्री नहीं थी। हँसकर वह भी झट बोल उठी—'तुम्ही कहां रोज खड़ी रहती हो दीदी?'

'मुझे क्या घर से पैर निकालने का अवसर मिलता है बहन? छोटे लड़के की बीमारी के कारण एक क्षण के लिए भी निकलने का समय नही मिलता।'

'उसे क्या हुआ है?'

'बुखार है, तिल्ली बढ़ गई है, पेट मे न जाने क्या-क्या रोग हो गये है? उसे कोई रोग होने को बाकी नही है।'

'बहू कहां गई?'

'अभी ही उन्होंने जरा-सा खाया है, उस कमरे में लड़के के पास जाकर बैठी है।'

'खाने में इतनी देर कर दी है?'

'हाराण की राह देख रही थीं। वह तीन दिन से घर नहीं आया। उन्होने सोचा कि सम्भव है आता ही हो। इसीलिये खाने में उन्हें इतनी देरी हो गई।'

विन्दो वहां रुकी नहीं। वह सीधे उस कमरे मे गई, जिसमें बहू, अपने रोगग्रस्त छोटे लड़के माधव के सिरहाने बैठी हुई उसे कहानी सुना रही थी।

माधव हाराणचन्द्र मुकर्जी का छोटा लड़का है। उसकी आयु अभी आठ वर्ष की है। एक वर्ष हुआ, वह मलेरिया ज्वर से पीड़ित हुआ था। तब से इस रोग से एक दिन के लिए भी उसका पिण्ड नही छूट सका है। इधर उसकी तिल्ली भी बढ गई है। इससे अत्यधिक निर्बलता के कारण वह एक तरह से चारपाई से लग गया है। रोग उसका कुछ वैसे असाध्य नही है। यदि नियमित रूप से किसी अनुभवी चिकित्सक के परामर्श के अनुसार उसकी चिकित्सा की जाती तो वह अब तक कभी का ठीक हो गया होता। लेकिन अर्थाभाव के कारण उसकी चिकित्सा की कोई भी उचित व्यवस्था नही है। सुनी-सुनाई साधारण ढङ्ग की औषधियो, चूर्णों तथा कुनाइन की मदद से वह किसी तरह भी रोगमुक्त नही हो पाया। अपने शान्त, स्निग्ध और उज्ज्वल नेत्रों की दृष्टि, माता के मुख पर स्थापित करके माधव ने कहा, 'माँ, बाबू जी तीन दिन से मुझे देखने के लिए क्यों नही आये?'

'वे यहाँ नही हैं।'

'कहाँ गये है माँ?'

माँ ने जरा-सा इधर-उधर करके कहा—'तुम्हारी दवा लेने गये है।'

बालक प्रसन्न हो उठा। उसने कहा—'मीठी दवा लाते तो अच्छा था माँ। कडवी दवा मुझसे नही खाई जाती। देखो माँ, अच्छा होकर पहले की तरह फिर घूमने-फिरने की मेरी बड़ी इच्छा होती है।' जरा देर रुकने के बाद वह फिर बोल उठा—'हाँ, मैं अच्छा हो जाऊँगा न?'

माँ के नेत्रों मे जल आ रहा था। मन-ही-मन वे कह रही थी—'विधाता के मन मे क्या है, यह तो वे ही जानते है?' प्रकट रूप से वे कुछ कहने को ही थी, इतने मे तेजी से पैर बढ़ाती हुई विन्दो पास आ गई और बोली—'क्यों नही हो जाओगे बेटा? मैं पास रहकर तुम्हे अच्छा कर दूँगी।'

माधव या उसकी माता ने अभी तक यह नही देखा था कि बिन्दो आ रही है, इससे उसकी बात सुनकर वे दोनो ही चकित हो उठे।

बिन्दो चारपाई पर बैठ गई। उसने कहा—'शुभदा, भोजन कर लिया है तुमने?'

हाराणचन्द्र की स्त्री का नाम था शुभदा। विन्दो उम्र में उससे कुछ छोटी थी। लेकिन फिर भी बातचीत के मौके पर वह उसका नाम लेकर ही पुकारा करती थी। शुभदा ने सिर हिलाकर सूचित किया—'हाँ।'

'तुम्हारी बड़ी लड़की कहाँ है ?'

'शायद ऊपर है।'

'तनिक उसे बुलाओ तो।' यह कहकर विन्दो स्वयं पुकारने लगी—'ललना, ओ ललना !'

ऊपर से ही ललना बोली—'क्या है ?'

'जरा नीचे तो आओ बिटिया।'

ललना के आने पर विन्दो ने अपनी कन्या को उसे दे दिया और कहा—'प्रमिला को लेकर थोड़ी देर तक तुम अपने छोटे भाई के पास बैठो तो बिटिया ! बहुत दिनों के बाद तुम्हारी माँ से भेंट हुई है, उस कमरे में जाकर थोड़ी देर मैं इनसे बातें कर लूँ तो आती हूँ।'

प्रमिला को ललना को देकर विन्दो शुभदा का हाथ पकड़े हुए ऊपर जाकर बैठी। कमरे का दरवाजा उसने बन्द कर लिया। तब उसने कहा—'हाराण भाई आज कितने रोज से घर नहीं आये ?'

'तीन दिन से।'

'आये क्यों नहीं ? कुछ मालूम है तुम्हें ?'

'कुछ नहीं !'

विन्ध्यवासिनी जिस प्रकार से बातें कर रही थी, उसके कारण शुभदा को आशंका हो रही थी। उसे जान पड रहा था, मानो वह कोई बात कहना ही चाहती है। इधर विन्ध्यवासिनी मौन भाव से बैठी हुई कुछ सोचने लगी। शुभदा भी व्यग्रतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा करने लगी। बड़ी देर के बाद विन्दो ने कहा—'शुभदा, ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो इच्छा करने पर भी मधुर भाव से नहीं कही जा सकती। जानती हो न !'

सूखे हुए मुख से शुभदा ने कहा—'जानती हूँ। क्यों ?'

'इधर तीन-चार दिन से हाराण भैया घर नहीं आये। मान लो कि उसके सम्बन्ध में अगर कोई ऐसी बात बतलानी पड़े जो कि अशुभ हो ?'

शुभदा की सारी देह में बिजली-सी दौड़ गई। 'शायद वे अब जिन्दा

नहीं हैं ?'

'पगली कहीं की ! भला जिन्दा क्यों रहेंगे ? वे जिन्दा हैं, सब तरह से भले-चंगे हैं।'

सब तरह से ठीक है, यह सुनने पर भी शुभदा कुछ कह न सकी। बहुत देर के बाद मुरझाये हुए मुख से उसने धीरे-धीरे पूछा—'तब हुआ क्या है ?'

'यही बतलाने तो मैं आई हूं। किन्तु तू जब इस तरह व्याकुल हो उठेगी तब मैं कैसे कोई बात बतला सकूँगी ?'

शुभदा ने एक लम्बी सांस भरी। उसने कहा—'अच्छी बात है, मैं घबराऊँगी नहीं। क्या हुआ है, बतलाओ तो ?'

'रुपये खा गये हैं, इसलिए नन्दी महोदय ने हवालात भिजवा दिया है।'

'हवालात भिजवा दिया है !' शुभदा का चेहरा फक हो गया। उसने पूछा—'अब क्या होगा ?'

'होगा क्या ? उन्हें छुड़ा ले आना होगा।'

'क्या यह सम्भव है ?'

'सम्भव क्यों नहीं है ? क्या हवालात में जाते ही कोई कैद हो जाता है ?'

बड़ी देर चुप रहने के बाद शुभदा ने कहा—'बिन्दो, एक बार मैं तुम्हारे बाबू जी के पास जाऊँगी।'

बिन्दो ने सिर हिलाया। वह जानती थी कि शुभदा को देखने पर पत्थर पिघल जायगा, लेकिन भवतारण गांगुली न पिघलेंगे। इसीलिए अपनी असम्मति प्रकट करती हुई बोली कि उनके पास जाकर तुम करोगी क्या ?

'मेरे तो कोई है नहीं, अगर वे दया करके कुछ उपाय कर दें तो ?'

'जिसके कोई नहीं होता, उसकी रक्षा भगवान् करते हैं। हाराण भैया और मेरे बाबू जी में सदा से ही शत्रुता का भाव था। ऐसी अवस्था में उनके पास जाने में कोई लाभ नहीं है।'

'तब क्या उपाय है ?'

'उपाय मैं कर दूंगी। अगर कुछ करना नहीं है तो क्या मैं बेकार यह

दु:खमय समाचार ही सुनाने आई हूँ ? लेकिन मैं जो कुछ कहूँगी, वह क्या तुम कर सकोगी ?'

'जरूर करूँगी।'

'चाहे कितना कठिन काम हो ?'

शुभदा ने दृढ़ स्वर में कहा—'हाँ।'

'तो सुनो। वे दो-तीन सौ रुपये खा गये है, इसीलिए नन्दी बाबू ने उन पर दावा कर दिया है।'

'दो-तीन सौ रुपये !' शुभदा को भ्रम हुआ। उसने कहा—'इतने रुपये क्या कोई एक साथ खा सकता है ? इसके सिवा यदि वे रुपये चुरा भी लाते तो रखते कहाँ ? नही विन्दो, इतने रुपये उन्होने कभी नहीं चुराये।'

'नही चुराये तो अच्छा ही है। लेकिन अब तो इस तरह सोच-विचार करने से काम न बनेगा। इस समय केवल एक उपाय है। इतने रुपये नन्दी महोदय को देकर उनसे अनुनय-विनय की जाय तो सम्भव है कि वे मामला उठा लें।'

'लेकिन यह कैसे हो सकता है ? इतने रुपये मिलेंगे कहाँ ?'

'रुपयो के लिए भी मैं एक उपाय बताती हूँ। बहू, यह लज्जा प्रदर्शित करने का समय नही है। मैं अपने हाथ के दोनों सोने के कडे तुम्हे दे रही हूँ। इन्हे लेकर आज रात में तुम स्वयं भगवान बाबू के पास जाओ। उनसे मुलाकात होने पर जो उचित हो, वह करना।'

शुभदा ने आश्चर्य करके कहा—'तुम्हारे हाथ के कड़े ले जाऊँ !'

'हाँ, मैं अपने कड़े तुम्हें दे रही हूँ, तुम इन्हें नि.संकोच ले जाओ। इन दोनो कड़ों का दाम तीन-चार सौ रुपये होगा। उन्हें देकर तुम उनसे अनुनय-विनय करना तो सम्भव है कि वे छोड दें।'

'किन्तु विन्दो…!'

'किन्तु क्या ? पहले तुम अपने स्वामी को बचाओ तब फिर किन्तु-परन्तु करना। यह क्या संकोच करने का समय है बहू ? मेरे रुपये वापस करने की तुम्हें कुछ चिन्ता ही न करनी चाहिए। तुम्हारा लड़का बड़ा होने पर ये रुपये अदा कर देगा ?'

'क्या आज ही जाऊँ ?'

'हाँ, आज ही।'

'जाऊँ किसके साथ ?'

'क्या कोई ऐसा विश्वासपात्र आदमी है ?'

'कोई नही।'

'तो फिरअकेली ही जाओ। अकेली जाना और भी अच्छा है। क्योंकि जितने आदमी सुनेंगे, उतनी तरह की बातें होंगी।'

'अच्छी बात है, मैं आज ही जाऊँगी।'

'हाँ, तुम *आज ही जाना। साँझ हो जाने के बाद एक मैली-सी* धोती पहन लेना और मुँह ढक लेना; तब जाना। मैं कल फिर इसी समय आऊँगी।'

विन्दो शुभदा से विदा हुई। उसके चलते वक्त शुभदा की आँखों से आँसुओं की बूँदें टपकने लगी। विन्दो ने स्नेहपूर्वक उन्हें पोंछ दिया। बाद को वह बोली—'भगवान की कृपा होगी तो सारा संकट कट जायगा। अगर यह उपाय समुचित उपयोगी न सिद्ध हुआ तो दूसरा उपाय बताऊँगी। तुम चिन्ता मत करो।'

अञ्चल के छोर से खोलकर विन्दो ने पाँच रुपये शुभदा के हाथ पर रख दिये। उसने कहा—'बहू, समझ लो कि हम दोनों सगी बहनें हैं। मुझ से किसी तरह की लज्जा करने की आवश्यकता नहीं। ये रुपये तुम ले लो। लड़के के वास्ते कोई चीज खरीद देना।'

नीचे आकर अपनी कन्या प्रमिला का हाथ पकड़ कर विन्दो ने कहा—'देर बहुत हो गयी। चलो बिटिया घर चलें।' अन्त में विधवा ललना के ऊपर स्नेहपूर्ण करुण दृष्टि डालकर वह घर से चल दी।

३

दोपहरी में हवा की गति बहुत तेज हो उठी थी। उसके झकोरों से टक्कर लेने मे असमर्थ होने के कारण मेघ छिन्न-भिन्न हो उठे थे।

वास्तव में वह समय शुभदा के लिए बहुत ही प्रतिकूल था। एक तो

हलुदपुर की झाड़ियों के बीच से होकर उसे जाना था; दूसरे बादलों की उमड़-घुमड़ हो रही थी। तो भी उसे यात्रा करनी पड़ी। दोनों कंकणों को उसने साड़ी के छोर में बाँध लिया। बाद को एक बिछौने की चादर से देह को अच्छी तरह ढककर वह निकल पड़ी। पहले वह कभी ब्राह्मणपाड़ा गई नही थी। उसने यह सुना जरूर था कि सीधे उत्तर की तरफ आधा कोस चलने के बाद पक्की सड़क मिलती है और उससे होकर थोड़ी ही दूर तक चलने पर ब्राह्मणपाड़ा मिलता है।

इतनी जानकारी के आधार पर शुभदा घर से चल पड़ी। उसने सोचा कि ब्राह्मणपाड़ा पहुँच जाने पर जमीदार की कोठी मिलने में किसी तरह की दिक्कत न होगी। उसने यह सुन रक्खा था कि गांव में घुसते ही नन्दी महोदय की ऊँची अट्टालिका दिखाई पड़ती है। इससे वह और भी बहुत कुछ निश्चिन्त थी। लेकिन हलुदपुर की अन्धकारमय पगडण्डी को पार करके पक्की सड़क तक पहुँचने मे भी उसे अत्यधिक कष्ट सहन करना पडा। उसके जरा ही दूर बढ़ने पर अन्धकार प्रगाढ़ हो उठा और बूँदें भी गिरने लगी। लेकिन शुभदा साहसपूर्वक बढ़ती ही जा रही थी। थोडी ही देर में जब बूँदें मूसलाधार वर्षा के रूप मे परिणत हो गईं तब वह वृक्ष के नीचे खड़ी हो गई। रास्ता चलना अब असम्भव था। अन्धकार के कारण हाथ भर दूर की भी चीजें दिखाई नही दे रही थी। जोरों की वर्षा हो रही थी, साथ-ही-साथ रह-रहकर बिजली चमकती और बादल भी गड़गडा जाते। इससे शुभदा की अन्तरात्मा काँप उठी।

वृक्ष की छाया में शुभदा अधिक समय तक नही रह सकी। उसने देखा कि चारो तरफ से वन के पशु दौड़ते हुए इस वृक्ष की छाया का आश्रय लेने के लिए आते है और वहाँ मनुष्य की मूर्ति देखकर भय के मारे चिल्लाते हुए भाग जाते है। इससे शुभदा के मन में एकाएक यह बात आई कि कहीं आश्रय की आकाक्षा से चोर-डाकू न यहाँ आ टपकें। उस दशा में तो परिस्थिति बहुत ही भयावह हो उठेगी। प्राणों के लिए शुभदा को इतना भय नहीं था, भय था उसे सोने के दोनों कड़ों के लिए। वे कड़े उसके प्राणों से भी अधिक मूल्यवान थे। उन्ही को लेकर वह स्वामी को छुड़ाने जा रही थी, इसलिए वे ही उसके आशा-भरोसा सब कुछ थे।

बहुत कुछ सोच-विचार करने के बाद शंकित होकर शुभदा उस पेड़ की छाया से हट आई। वह फिर आगे की तरफ बढने लगी।

दुगुने उत्साह से चलते-चलते शुभदा ने देखा तो वह सचमुच पक्की सडक पर आ पहुँची थी। लेकिन अब एक दूसरी ही चिन्ता ने उसे आ घेरा। जब तक उसे रास्ता नही मिल सका था, तब तक वह केवल इसी चिन्ता में थी कि मैं किस तरह निर्दिष्ट स्थान तक पहुँच पाऊँगी। परन्तु अब कार्य की चिन्ता से अधीर हो उठी। शुभदा के मन में आया—इतनी रात में किस तरह मुलाकात हो सकेगी बाबू साहब से? मुलाकात होने पर भी क्या कार्य सिद्ध हो जायेगा? कार्य सिद्ध हो या न हो, ऐसे क्किराल समय मे मैं कैसे लौटकर आऊँगी?

इसी तरह की कितनी ही बातें सोचते-सोचते शुभदा ने ब्राह्मणपाड़ा नामक ग्राम मे प्रवेश किया। थोड़ी देर ही चलने पर वह एक विशाल अट्टालिका के पास पहुँच गई। उस अट्टालिका से मिला हुआ एक बगीचा था जिसके चारों तरफ तार का घेरा था। शुभदा ने समझ लिया कि यही नन्दी महोदय का भवन है। इससे वह सोचने लगी कि अब सुविशाल भवन मे प्रवेश किस प्रकार करूँ? अगर प्रवेश कर भी पाऊँ किसी तरह तो इतनी रात मे उनसे मुलाकात कैसे कर सकूँगी?

शुभदा को उस समय रोना ही रोना सूझ पडता था। परिश्रम, अनाहार तथा दुर्भावना के कारण वह मृतप्राय हो उठी थी। नन्दी महोदय की कोठी के सामने जो मन्दिर था, उसी के बरामदे में आकर वह खडी हुई। उस समय भी पानी बन्द नहीं हुआ था लेकिन कम हो गया था।

शुभदा भीगे हुए कपड़ों को निचोड़ने लगी। इतने में उसने देखा कि एक वृद्ध नौकर ने जमीदार की कोठी का फाटक खोला और हाथ मे दीपक लिए वह मन्दिर की ओर आ रहा है। उसे देखकर शुभदा के दिल मे क्षीण आशा का संचार हुआ। उसने सोचा सम्भव है इस वृद्ध से कुछ पता चल जाय। इसीलिए प्रस्थान न करके मन्दिर के बरामदे में ही वह एक किनारे खडी रही। मन्दिर के द्वार के सामने आकर वृद्ध ने देखा कि घूँघट से मुँह ढके हुए एक स्त्री खड़ी है परन्तु उससे उसने कुछ कहा नहीं। वह चुपचाप भीतर चला गया। काफी समय तक वहाँ रहने के बाद जब वह बाहर

निकला तब भी वह स्त्री उसे उसी रूप में खड़ी हुई मिली।

वृद्ध ने पहले अनुमान किया था कि यह किसी भले घर की स्त्री है, वर्षा के भय से यहाँ आ गई है, अब चली जायगी। परन्तु इतनी देर के बाद भी उसने जब उसे उसी तरह खड़ी पाया तब कौतूहल में आकर उसने पूछा—'तुम कौन हो ?'

स्त्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'कहाँ जाओगी माई ?'

लज्जा के कारण शुभदा के मुँह से कोई बात निकल न रही थी। परन्तु विवश होकर उसे बोलना ही पड़ा। मृदु वाणी से उसने कहा—'जमींदार साहब की कोठी में।'

'सामने ही तो कोठी है। उसमें न जाकर तुम यहाँ क्यों खड़ी हो ?'

शुभदा कोई जवाब न दे सकी।

वृद्ध ने फिर पूछा—'तुम किसके पास जाओगी कोठी में ?'

'बाबू साहब के पास।'

'किन बाबू साहब के पास ?'

'भगवान् बाबू के पास।'

ताज्जुब करके वृद्ध ने कहा—'भगवान् बाबू के पास ?'

'हाँ।'

'तो चलो मेरे साथ।' यह कहकर वृद्ध आगे-आगे चलने लगा।

शुभदा ने चन्द्रमा के प्रकाश में देखा कि वृद्ध के बाल पककर सफेद हो गये हैं और इसकी मूर्ति में सौम्यता स्पष्ट रूप से झलक रही है। इससे निःसंकोच होकर वह उसके पीछे-पीछे चलने लगी। क्रमशः फाटक के भीतर प्रवेश करने के बाद बगीचे को पार किया। अन्त में एक कमरे का दरवाजा खोलकर वृद्ध ने कहा—'इस कमरे में चली आओ।'

शुभदा ने कमरे में प्रवेश किया। खूब सजा हुआ कमरा था। सारे फर्श पर एक कीमती गलीचा बिछा हुआ था। सामने मसनद लगाकर—गृहस्वामी के बैठने के उपयुक्त एक विशिष्ट आसन लगा हुआ था। वृद्ध उसी पर विराजमान हुआ। अब दीपक के प्रकाश में शुभदा को उसने नीचे से ऊपर तक देखा। घूँघट की जरा-सी राह से उसके मुख का जितना

अब देखा जा सकता था, उसे उसने देख लिया। कोई ऐसा भी समय था, जबकि शुभदा रूपवती थी। एक तो अब अवस्था अधिक थी, दूसरे दुख-क्लेश से भी उसे बराबर ही टक्कर लेनी पडी है। इस कारण उसमे अब वह ज्योति नही रह गई। परन्तु उसके आभाहीन मुख पर भी जितनी ज्योति अवशिष्ट थी, उसी से वृद्ध मोहित हो उठा। कुछ देर तक उसकी तरफ देखते रहने के बाद उसने कहा—'बच्ची, तुम भूल रही हो। शायद तुम विनोद बाबू से मुलाकात करना चाहती हो।'

'कौन हैं विनोद बाबू ?'

'भगवान् बाबू के छोटे भाई हैं विनोद बाबू।'

शुभदा ने कहा—'मैं उनसे नही मिलना चाहती।'

'तो तुम्हारा मतलब क्या भगवान् बाबू से ही है ?'

'हाँ।'

'मेरा ही नाम भगवान् नन्दी है। लेकिन मुझे जहाँ तक याद है, मैंने तो तुम्हे कभी देखा नहीं।'

शुभदा ने सिर हिलाकर कहा—'नही।'

'तब मुझसे तुम्हारा क्या काम निकल सकता है ?'

शुभदा कुछ न बोली। भगवान् बाबू ने फिर कहा—'मैंने सोचा था कि रात मे एक स्त्री का काम विनोद से ही हो सकता है। इतनी रात मे मुझसे तुम्हारा क्या मतलब है, यह मेरी समझ मे नही आता।'

इस पर भी शुभदा कुछ नही बोली।

तब भगवान् बाबू ने पूछा—'तुम्हारा निवास स्थान कहाँ है ?'

'हलुदपुर मे।'

'हलुदपुर में ! मुझमे तुम्हारा काम है ? तो क्या तुम हाराण की स्त्री हो ?'

शुभदा ने मस्तक हिलाकर घूँघट के भीतर से ही कहा—'हाँ।'

'तो बताओ तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?'

अञ्चल के छोर से दोनों ही कड़ों को खोलकर शुभदा ने धीरे-धीरे भगवान् बाबू के पैरों के पास रख दिया। बाद को गद्‌गद् कण्ठ से वह बोली—'उन्हे मुक्त कर दीजिए।'

वृद्ध की समझ में सारी बात आई। दोनों कंकणों को हाथों में लेकर उसने उनकी परीक्षा की। बाद को उसने कहा—'तो भी मैं कुछ सुखी हो पाया हूँ। भला एक चीज तो उसने बनवा दी? बाद को उन्हें नीचे रख-कर वह बोला—'तुम इन्हें ले जाओ। तुम ब्राह्मण की बेटी हो, तुम्हारे हाथ के कंकण ले लेना उचित नहीं है। यदि छोड़ना होगा तो मैं योंही छोड़ दूंगा। वह मेरे इतने रुपए खा गया है कि उनकी तुलना में ये आभूषण नहीं के बराबर हैं। इससे इन्हें लेना या न लेना बराबर ही है। इससे तो यह अच्छा होगा कि मैं उसे ऐसे ही छोड़ दूं।'

आँखें पोंछते हुए शुभदा ने कहा—'उन्हें छोड़ दीजिएगा न?'

'इच्छा तो नहीं थी। उसके जैसे दुश्चरित्र को उपयुक्त दण्ड देना ही अच्छा था। तो भी तुम्हारे कारण उसे ऐसे ही छोड़ दूंगा।'

शुभदा की आँखों से आँसू गिरने लगे। भगवान् बाबू के प्रति उसका हृदय भर उठा। परन्तु अपने पिता से भी अधिक अवस्था के वृद्ध को ब्राह्मण की कन्या होकर मुँह खोलकर आशीर्वाद देने का साहस न कर सकी। मन-ही-मन उन्हें सैकड़ों बार धन्यवाद देकर उसने ईश्वर के चरणों में सहस्र बार उनकी मंगल कामना की, बाद को लौटने के लिए वह उठ-कर खड़ी हो गई। मुँह ऊपर करके भगवान् बाबू ने कहा—'आज ही लौट जाओगी?'

शुभदा ने सिर हिलाकर स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

'तुम्हारे साथ क्या और कोई आदमी है?'

'कोई नहीं।'

'कोई नहीं है। तब अकेली मत जाओ। एक आदमी साथ लेती जाओ।'

शुभदा ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उस झाड़-झंखाड़ से होती हुई वह अकेली ही घर की ओर चली। सवेरा होते-होते वह घर पहुँच गई। ललना उससे पहले ही उठ चुकी थी। अपना दैनिक कार्य वह आरम्भ करने को ही थी, इतने में भीगे कपड़े पहने माँ को आती देखकर उसने कहा—'माँ, आज बड़े सवेरे स्नान कर आई हो?'

'हाँ।'

४

शुभदा ने अपनी दोनों कन्याओं का नाम रासमणि और दुर्गामणि न रखकर ललना और छलना रक्खा था, इस कारण उसकी ननद रासमणि के मनस्ताप का ठिकाना नहीं था। ये ऊल-जलूल नाम 'ललना और छलना' आठों पहर उनके कानों में चुभते रहते थे। 'ललना' नाम थोड़ा-बहुत अनुकूल भी पड़ता था, परन्तु 'छलना' कहाँ का नाम था।

रासमणि छलना से कभी प्रसन्न नहीं रहा करती थी। वह एक तरह से उनकी आँखों की काँटा थी। उनकी अप्रसन्नता का दूसरा चाहे जो भी कारण रहा हो, पहला कारण उसका यह वेढङ्गा नाम ही था। उनकी धारणा थी कि लोग बालक-बालिकाओं का नामकरण देवी-देवताओं के नामों के अनुसार किया करते है, जिससे उन्हें पुकारते समय किसी देवी या देवताओं का नाम मुँह से निकल आवे। लेकिन इन दोनों कन्याओं को पुकारते समय तो मन में इस प्रकार के भाव का संचार होता है, मानो पाप का भार धीरे-धीरे करके बढ़ रहा है।

ललनामयी और छलनामयी ये हारण बाबू की दो कन्याएँ थी। उनमें एक बड़ी थी और दूसरी छोटी। एक की उम्र सत्रह वर्ष की थी, दूसरी की ग्यारह वर्ष की। एक विधवा थी, दूसरी अविवाहिता।

यह तो हुआ परिचय उन दोनों का। रही बात उनके गुण की। गुणों का वर्णन करना लेखक के लिए सम्भव नहीं है। परन्तु गंगा-तट पर ललना जब स्नान के निमित्त जाया करती, तब वहाँ पर एकत्र परिपक्व अवस्था की स्त्रियाँ आपस मे कहा करती, 'विधवा बनाने के लिए ही शायद भगवान ने इस छोकरी को इतना रूप दे रखा है?' ललना दूसरी ओर मुँह फेरकर जल में डुबकियाँ लगाया करती। नवयुवतियाँ भी कानाफूसी किया करतीं। वे क्या कहतीं, यह उनके सिवा और किसी के कानों तक नहीं पहुँच पाता था। लेकिन उनके चहरे का भाव देखकर अनुमान यही होता कि ये प्रशंसा नहीं कर रही हैं।

निन्दा या प्रशंसा का ललना पर किसी प्रकार का असर नहीं पड़ा करता था। वह अधिकतर किसी से बातें नहीं किया करती थी। किसी

के लेने-देने मे भी वह नहीं रहती थी। उसमे यदि कोई बोलता तो वह दो-चार बातें कर लेती, वर्ना चुपचाप स्नान करती, जल भरती और गंगाजी से निकलकर सीधे अपने घर चली आती।

छलना का स्वभाव अवश्य ललना से सर्वथा विपरीत था। वह बातें अधिक किया करती थी, दूसरों की बातों में दखल देना उसे बहुत प्रिय था। आठ बजे स्नान के लिए निकलने पर ग्यारह बजे से पहले वह कभी नही लौटती थी। आभूषण न होने के कारण वह प्रायः अप्रसन्नता का भाव प्रकट किया करती थी। चौके में बैठने पर वह प्रायः इस बात के लिए कलह किया करती कि मोटे चावल का भात मुझसे नही खाया जाता। किसी-किसी दिन तो किसी विशेष प्रकार के खाद्य के अभाव के कारण वह थाली ठेल दिया करती थी। दिन भर मे उसके इस तरह के सैकड़ों काण्ड हुआ करते थे।

छलना के भी रूप की तुलना न थी। तपाये हुए सोने का-सा उसके शरीर का वर्ण था। गुलाब के फूल के समान मुख था, जिस पर भौंहें मानों किसी ने तूलिका से चित्रित कर दी थी। पान खाने के बाद अपने पतले-पतले दोनों होठों को लाल करके एकान्त में बैठकर छलनामयी दर्पण मे जब अपनी कान्ति देखती तब वह स्वयं अपने को गौरवान्वित अनुभव किये बिना न रहती। मन-ही-मन वह कहती—'इस उम्र में मुझमें जब इतना अधिक सौंदर्य है तब उपयुक्त अवस्था आने पर तो पता नहीं, क्या दशा होगी ?'

छलनामयी अपने यौवन काल की मधुर मूर्ति की प्रायः कल्पना किया करती। वह सोचा करती—'उस समय कितने आभूषण होंगे मेरे शरीर पर! यहाँ कड़े होंगे, यहाँ अनन्त होगा, यहाँ हार होगा, यहाँ चिक होगा और यहाँ कण्ठा होगा।' इसी प्रकार जितनी तरह के भी आभूषण शरीर के जिस-जिस अंग में धारण किये जा सकते हैं, उन सभी को प्राप्त करके धारण करने की कल्पना वह किया करती थी। कल्पना के इस आनन्द का वह अकेली ही नहीं उपभोग किया करती थी बल्कि दौड़ती हुई वह बड़ी बहन के पास पहुँच जाया करती। उसे तेजी से आती देखकर ललना पूछती—'क्यों छलना, तू दौड़ क्यों रही है इस तरह ?'

'क्यों दीदी, मेरे शरीर का रंग क्या पहले से कुछ काला हो गया है ?'

'क्यों हो जायगा काला ?'

'नहीं हुआ ? अच्छा दीदी, हमारे गाँव मे क्या कोई ऐसा पुरुष है जो भविष्य की बातें बतला सकता है ?'

'क्यो ?'

'अपना हाथ दिखलाऊँगी।'

'क्या करोगी हाथ दिखलाकर ?'

'मैं चाहती हूँ कि कोई हाथ देखकर यह बतलाए कि बड़ी होने पर मुझे पहनने को आभूषण मिलेंगे या नही ?'

ललना के नेत्र आँसुओं से परिपूर्ण हो उठते। वह कहती—'तुझे आभूषण खूब मिलेंगे बहन ! तू राजरानी होगी।'

बडी बहन कि बात सुनकर छलना शर्म से लाल हो उठती। उठकर भाग जाती। वह मन-ही-मन कहती—'मैं केवल यहीं पूछ रही थी कि मुझे पहनने के लिए आभूषण मिल सकेंगे या नही, राजरानी होने या न होने की बात इनसे किसने पूछी है ?'

किसी-किसी दिन आकर वह पूछती—'दीदी, हम लोगों के पास कुछ क्यों नही है ?'

ललना जवाब देती—'हम लोग दु.खी है इसलिए !'

'हम लोग इतने दु.खी क्यों हैं दीदी ? गाँव मे और कोई तो नहीं है जो हम लोगो की तरह रहता हो, हम लोगों का-सा दु.ख भोगता हो ?'

'ईश्वर ने जिसकी जो दशा कर दी है उसे उसी दशा मे रहना होता है ?'

'ईश्वर ने और तो किसी की ऐसी दशा नही की। हमारी ही क्यो की है ?'

'यह हम लोगो के पूर्वजन्म का पाप है।'

ललना चली गई। सचमुच उस समय माँ उसे बुला रही थी। पास जाकर उसने कहा—'क्या है माँ ?'

'तुम्हारे बाबू जी आये हैं। उस कमरे में···।'

बात समाप्त होने से पहले ही ललना चली गई।

भोजन करते समय रासमणि ने पूछा—'इतने दिन तक तुम कहाँ थे ?'

मुख में ग्रास डालकर हाराण बाबू ने गम्भीर भाव से कहा—'यह एक बहुत बड़ी कहानी है।'

रासमणि का मुँह फैल गया—'कौन-सी ऐसी बड़ी कहानी है रे ?'

मुँह का ग्रास गले से नीचे उतारकर हाराण बाबू ने पहले की ही तरह गम्भीर मुख से कहा—'बहुत बड़ी कहानी यह है कि मस्तक के ऊपर से प्रलय की आँधी निकल गई।'

रासमणि के आश्चर्य की सीमा न रही। चिन्ता भी उनकी अनन्त थी। प्रायः रुद्ध कण्ठ से वे बोल उठीं—'साफ-साफ क्यों नहीं बतलाता हाराण, क्या हो गया था तुझे ?'

गम्भीर मुख पर जरा-सी मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए हाराण चन्द्र ने कहा—'क्या हुआ था ? चक्की पीसने की पूरी तैयारी थी। नन्दी बाबू ने मुझ पर गबन का मामला दायर किया था।'

'मामला दायर किया था ?'

'हाँ ! लेकिन असत्य के बल पर वे कहाँ तक चलते ? किसी तरह का सबूत वे न दे सके, इससे मुकदमा जीतकर आज घर चला आया हूँ।'

शुभदा ने घूँघट की आड़ में ही आँखें पोंछी। रासमणि ने नन्दी बाबू की भूरि-भूरि मंगल-कामना की। कुटुम्बियों-सहित उनकी मुक्ति के लिए उन्होंने दुर्गा जी के चरणों में बहुत तरह की प्रार्थना की। बाद को उन्होंने कहा—'लेकिन क्या वे अब भी नौकरी पर रखेंगे ?'

हाराण बाबू ने आँखें लाल-लाल करके कहा—'नौकरी पर रखेंगे ? अब मैं उनके यहाँ नौकरी करने के लिए जाता ही कहाँ हूँ ? इस जन्म में मैं उस हरामजादे भगवान् नन्दी का मुँह फिर देखूँगा ? अगर जिन्दा रहा तो इस अपमान का बदला लेकर ही रहूँगा। जिस तरह उसने मुझे अपमानित किया है उसी तरह उसका भी अपमान कर लूगा तब मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी।'

रासमणि कुछ भय तथा विस्मय से अपने वीर भाई की तरफ ताकती रह गई। बाद को मृदु कण्ठ में बोली—'लेकिन उस अवस्था मे खर्च आदि···।'

बात काटकर हाराणचन्द्र ने कहा—'इसके लिए तुम क्यों फिक्र कर रही हो दीदी। पुरुष होकर पृथ्वी पर जन्म ग्रहण किया है मैंने। एक नहीं पच्चीसों नौकरियाँ ठीक कर लूँगा।'

हाराणचन्द्र ने जो कुछ कहा, उस पर रासमणि ने पूर्णरूप से विश्वास कर लिया हो, यह बात नही थी तो भी उन्होंने किसी तरह धैर्य का अवलम्बन किया। अत्यधिक निराशा के कारण जब मनुष्य का हृदय द्वेष से व्यग्र हो उठता है, तब वह झूठी आशा को भी सच मानकर उस दुर्भावना से मुक्त होने के लिए प्रयत्नशील हो उठता है। यही हाल रासमणि का भी हुआ। उन्होंने मन को समझाया, बहुत सम्भव है कि हाराण जो कुछ कह रहा है, उसे कार्यरूप मे भी परिणत कर दे। कोई आश्चर्य नही कि इस संकट काल मे उसकी आँखें खुल जायँ। कुछ क्षण तक मौन रहने के बाद उन्होंने कहा—'जो तुम्हें अच्छा मालूम पड़े वही करना, परन्तु कुछ किये बिना चलेगा नही। हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहने पर इस बाल-बच्चेदार परिवार की विपत्ति की सीमा न रहेगी, विशेषतः ऐसी दशा मे जबकि घर में बीमार बच्चा पड़ा है।'

एक लम्बा चौड़ा उत्तर देकर हाराणचन्द्र ने भोजन समाप्त किया और वे चौके से उठकर बाहर आये। अब उनकी भेंट माधव से हुई। पिता के आगमन का हाल उसे मालूम हो गया था। इसलिए वह उत्कण्ठित होकर अभी तक शैय्या पर बैठा हुआ था। पास आकर हाराण बाबू ने पुत्र की पीठ पर हाथ फेरा। उन्होंने कहा—'कैसी तबीयत है तुम्हारी माधव?'

'आज अच्छी है बाबू जी, परन्तु तुम इतने दिनों तक आये क्यों नही?'

हाराणचन्द्र कोई उपयुक्त उत्तर खोज रहे थे। परन्तु माधव ने उसके लिए प्रतीक्षा नहीं की। वह फिर बोल उठा—'तुम तो मेरे लिए दवा लाने गये थे न? दवा ले आये हो?'

हाराणचन्द्र ने सूखे हुए मुँह से कहा—'ले आया हूँ।'

'अच्छी दवा है? उसे खाते ही अच्छा हो जाऊँगा?'

'अच्छे हो जाओगे।'

अत्यन्त प्रसन्न होकर बालक ने हाथ बढ़ाया और कहने लगा—

'तो आओ।'

अब हाराणचन्द्र संकट में पड़ गये। जरा इधर-उधर करके उन्होंने कहा—'इस समय नहीं, रात में खाना।'

वालक इस बात से सन्तुष्ट हो गया। बहुत ही धीरे से हँसकर उसने कहा—'अच्छी बात है, रात में ही खाऊँगा।' बाद को कुछ क्षण तक पिता की ओर देखकर उसने कहा—'बाबू जी, मेरे लिए एक अनार खरीद लाना। लाओगे न ?'

हाराणचन्द्र ने सिर हिलाकर प्रकट किया, 'ला दूँगा।'

इसके बाद ही शुभदा से उनका सामना हुआ। उसे अपने पास बुला-कर उन्होंने कहा—'क्या तुम मुझे दो आने पैसे दे सकती हो ?'

'क्यों ?'

'मुझे पैसों की आवश्यकता है। एक आदमी से मैंने पैसे उधार लिये थे, वही माँग रहा था।'

बक्स खोलकर शुभदा ने दो आने पैसे निकाले। हारणचन्द्र ने झाँक कर देखा तो उस सन्दूक में और भी पैसे थे। हाथ फैलाकर दो आने पैसे लेने के बाद उन्होंने कहा—'अगर तुम्हारे पास हों तो चार आने पैसे और दे दो, माधव के लिए अनार मोल ले आऊँगा।'

शुभदा ने कातर भाव से एक बार स्वामी के मुँह की तरफ देखा। इतने पैसे एक साथ निकालकर देने में कदाचित वह कष्ट का अनुभव कर रही थी। परन्तु बाद को सन्दूक खोलकर उसने निकाल कर दे दिये।

पैसे सँभालकर हाराणचन्द्र ने मुट्ठी में ले लिये। बाद को जरा जोर देकर हँसने के बाद उन्होंने कहा—'ये पैसे मैं तुम्हें कल ही लौटा दूँगा।'

शुभदा ने अन्यमनस्क भाव से सिर हिलाया। उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि स्वामी की आधी से अधिक बातें निरर्थक होती हैं। पैसे हाथ में आते ही वे बाहर जाने के लिए तैयार हो गये। यह देख शुभदा बोली—'इस समय कहीं मत जाओ, थोड़ी देर आराम कर लो।'

हाराणचन्द्र ने मुँह फेर लिया। उन्होंने कहा—'यहाँ मैं क्या करूँ ? क्या घर बैठे रहने से मेरी गुजर है ? दुनिया भर के लोगों का भार तो सिर पर है।'

'तो जाओ।'

हाराणचन्द्र के चले जाने पर शुभदा ने सन्दूक में देखा। सिर्फ एक रुपया था उसमें। विन्ध्यवासिनी ने उस दिन जो कुछ दिया था, वह प्रायः समाप्त हो चला था, केवल वही एक रुपया उस परिवार का सहारा था। शुभदा ने उसे सन्दूक के एकान्त कोने में छिपाकर रख दिया। बाद को वह माधव के पास आकर बैठी। माधव ने कहा—'माँ, बाबू जी मेरे लिए अनार कब ले आवेंगे?'

'सन्ध्या को।'

सन्ध्या का समय आ गया। फिर रात हो गई। परन्तु फिर भी हाराण बाबू दिखाई नहीं पड़े। माधव ने कई बार उनकी खोज की, उनके सम्बन्ध में उसने कई बातें पूछीं, बाद को वह रोने लगा।

शुभदा आकर माधव के पास बैठी। ललना ने भी उसे फुसलाने के लिए बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वह किसी प्रकार भी शान्त नहीं हो रहा था। अन्त में रोते-रोते थककर वह बड़ी रात को सो गया। प्रातःकाल से कुछ पहले ही फिर उसकी नींद टूट गई। उठकर उसने कहा—'माँ, आया है मेरा अनार?'

किसी तरह आँसू रोककर शुभदा ने कहा—'तुम्हें अनार न खाना चाहिए बेटा।'

'क्यों?'

'अनार खाओगे तो तुम्हें नुकसान करेगा।'

माधव अभी तक उठकर बैठा था, अब वह लेट गया। दूसरे दिन दोपहर बाद हाराण बाबू घर आये। गुस्से के मारे रासमणि उनसे बोली तक नहीं। ललना हाथ-पैर धोने के लिए पानी ले आई। उसने उनके स्नान की व्यवस्था की और हुक्का तैयार कर दिया। हाराणचन्द्र ने स्नान आदि से छुट्टी पाकर भोजन किया। तब शुभदा ने धीरे-धीरे पूछा—'क्या माधव का अनार ले आये हो?'

'ओह! कहाँ ला सका भाई! मैंने जेब में पैसे रख लिये थे। मुझे ध्यान ही नहीं था कि जेब फटा हुआ है। सारे पैसे, पता नहीं कहाँ गिर गये। अगर हाँ तो चार आने उधार दे दो, सन्ध्या तक तुम्हारे सब पैसे

लौटा दूंगा।'

शुभदा ने खिन्न भाव से कहा—'अब पैसे नहीं हैं।'

इस पर हँसते हुए हाराणचन्द्र ने कहा—'यह तो मैं नही मान सकता। लक्ष्मी का भण्डार क्या कभी खाली होता है?'

शुभदा ने मन-ही-मन लक्ष्मी के भण्डार की अवस्था पर विचार किया। बाद को प्रकट भाव से वह बोली—'सचमुच पैसे नहीं हैं।'

'पैसे है क्यों नही? कल तो मैंने देखा था, बहुत-से पैसे थे और एक रुपया भी देखा था।'

शुभदा चुप रह गई। हाराणचन्द्र ने फिर कहा, 'छि:, थोड़े-से पैसों के लिए तुम मेरा विश्वास नही कर सकती हो। पूरे रुपये के लिए चाहे विश्वास न करो; चार आने पैसे की तो कोई वैसी बात नही। कम-से-कम इतना विश्वास तो तुम्हें कर ही लेना चाहिए।'

अब किसी प्रकार की शुभदा ने आपत्ति नही की। हाथ धोकर उसने अपेक्षित धन बक्स से निकाल दिया।

५

रुपये का खूब सदुपयोग किया गया। हाराणचन्द्र हलुदपुर ग्राम से चल कर ब्रह्मपुर पहुँचे। वहाँ वे एक गली में होकर गुजरे। थोड़ी ही दूर बढ़ने के बाद चटाई से घिरे हुए एक घर में उन्होंने प्रवेश किया। वहाँ बहुत-से प्राणी इकट्ठे होकर कोने में बैठे हुए थे। उन्हे देखते ही वे सब प्रसन्न होकर हल्ला करने लगे। प्रीति का झोका जोरों से चलने लगा। किसी ने बाबू कहकर हाराण को सम्बोधन किया, तो किसी ने चाचा कहा, किसी ने भैया कहा, किसी ने मामा कहा, किसी ने फूफा कहा और किसी ने मौसिया कहा। इस तरह वहाँ जितने आदमी इकट्ठे थे, उन सभी ने हाराण बाबू के साथ कोई न कोई प्रीति का सम्बन्ध जोड़ लिया। हाराण बाबू ने भी बहुत ही प्रसन्न होकर उन सब के बीच में स्थान ग्रहण किया। अब तरह-तरह के किस्से छिड़े। उन सब की कथाओं द्वारा कितने राजाओं, राजकुमारों तथा मन्त्रियों के शिरच्छेद का बखान हुआ, कितना

धन खर्च किया गया।

जिस स्थान का ऊपर उल्लेख किया गया है, वह अफीम की दूकान थी। संसार के एक छोर में यदि श्मशान है तो दूसरे छोर में अफीम की दूकान है। श्मशान में पहुँचने पर राजराजेश्वर भी भिक्षुक के समान हो उठता है। इसके विपरीत अफीम की दूकान में पहुँचकर भिक्षुक भी चक्रवर्ती सम्राट बन बैठता है। जैसे-जैसे अफीम का नशा जमता जाता है, वैसे-ही-वैसे हृदय के महत्व, वीर्य-पराक्रम, शौर्य, धैर्य, गाम्भीर्य और पांडित्य आदि एक-एक करके फूल-फूलकर बड़े से बड़े आकार धारण करते जाते है। उस समय एक-एक झूम में कितना दान हो जाता है, कितनी सम्पत्ति पैरों से ठेल दी जाती है? कितने मणिरत्न, कितना सुवर्ण, कितने राज्य, कितनी राजकुमारियाँ एक-एक झोंक में कहाँ की कहाँ हो जाती हैं। चटाइयों से घिरे हुए उस घर में, कहीं-कहीं तो कुछ-कुछ उजाला था और कहीं अन्धकार का ही साम्राज्य था, उपर्युक्त नियम विशेष रूप से चरितार्थ हो रहा था। मनुष्य की कामना की जितनी भी चीजें हो सकती हैं, वे सभी उस समय वहाँ मौजूद थीं। भूतल पर लगी हुई उस इन्द्रसभा का बखान करना कलम की ताकत से बाहर है।

सन्ध्या हो चली। यह देखकर कितने ही कालिदास, कितने ही दिल्ली के बादशाह, कितने नवाब सिराजुद्दौला, कितने मियाँ तानसेन बारी-बारी से चटाई छोड़कर निकलने लगे। संसार के निम्न श्रेणी के प्राणियों से वे मिल नहीं सकते थे। उनसे बातचीत करना तथा एक परिचित व्यक्ति के समान उनके साथ चलना इनके लिए शोभाजनक था नहीं, इसलिए सड़क के किनारे से होकर वे लोग अपने-अपने घर की ओर चले।

हाराणचन्द्र भी इस इन्द्रसभा से निकलकर बाहर आये। परन्तु बाहर आते ही उनके सामने एक झमेला खड़ा हो गया। न जाने कहाँ से रोगशय्या पर पड़े हुए उस अभागे माधव का मुख उनके स्मृति-पट पर उदित हो आया, साथ-ही-साथ स्मृति ने इस बात के लिए भी सचेत कर दिया कि तुम उसे अनार ले आने का वचन दे आये हो। इसमें सन्देह नहीं कि उस सभा मे सम्मिलित होने वाले दूसरे लोगों के समान ही वे भी कोई न-कोई उच्च पद प्राप्त करके बाहर आये थे लेकिन उस भाग्यहीन छोक

के मुख ने उस राज्य में बड़े जोर की हलचल मचा दी। दिल्ली के बादशाह ने पाकेट में हाथ डालकर देखा तो मालूम हुआ कि राजकीय कोष प्राय: शून्य है। इतने बड़े सम्राट के पास चार पैसों और गांजे की चिलम के अलावा और कुछ नहीं था। एक लम्बी सांस लेकर उन्होंने कहा—'बहुत अच्छा!' उन चार पैसों के सहारे पास की गांजे की एक दूकान में जा घुसे।

मधुर वाणी के द्वारा ठेकेदार का मन प्रसन्न करते हुए हाराण बाबू ने कहा—'चाचा, चार पैसे का गांजा तो दे दो।' ठेकेदार ने भी अविलम्ब ही उस आज्ञा का पालन किया।

हाराणचन्द्र ने एक पेड़ की मनोरम छाया खोजकर उस गांजे की सहायता से अपने मनोराज्य की सारी मनोदशा को दूर करके उसे फिर ठीक कर लिया। इन समस्त कर्मों का सम्पादन करते-करते रात अधिक बीत चली। यह देखकर उस पेड़ की छाया का परित्याग करने के बाद एक मकान के सामने जाकर वे खड़े हुए। दरवाजा खट-खटाकर उन्होंने पुकारा—'कात्यायनी!'

किसी ने जवाब नहीं दिया।

हाराणचन्द्र ने फिर पुकारा—'कात्यायनी! ओ कात्यायनी!'

इस बार भी उत्तर नहीं मिला।

अब हाराणचन्द्र गुस्से मे भर उठे। चिल्ला कर उन्होंने कहा—'क्यों जी कात्यायनी, द्वार खोल क्यों नही देती हो? मैं कब से चिल्ला रहा हूँ।'

इस बार बहुत ही क्षिण रमणी कण्ठ से उत्तर आया—'कौन है?'

'मैं हूँ, मैं!'

'मेरी तबियत बहुत खराब है। इस समय मुझसे न उठा जाएगा।'

'ऐसा मत कहो, उठकर दरवाजा खोल दो।'

अब पच्चीस वर्षीया एक युवती उठी और खांसते-खांसते जाकर उसने दरवाजा खोल दिया। काला और मोटा-ताजा उसका शरीर था। अंग-प्रत्यंग में गोदना गुदाये हुए थी। रूप उसका ठीक हाराणचन्द्र के ही समान था।

जोर से खांसते हुए युवती ने कहा—'आह! प्राण निकले जा रहे हैं!

पेट मे बड़े जोर का दर्द है। इतने जोर से चिल्लाते क्यों हो?'

'क्या शौक से चिल्लाता हूँ? दरवाजा नही खोलतीं हो, इसी से चिल्लाना पड़ता है।'

युवती गुस्से में भर उठी। उसने कहा—'नहीं बाबू, यह सब मुझसे नही सहा जाएगा। अगर आना हो तो जरा सवेरे-सवेरे आ जाया करो। न रात मानते हो, न दोपहरी मानते हो। जब जी में आता है, तभी आकर चिल्लाने लगते हो। यह नहीं हो सकता। इस तरह का झमेला मुझे अच्छा नही लगता।'

भीतर जाकर हाराणचन्द्र ने साँकल लगा दी। बाद को कात्यायनी के मुंह की ओर देखते हुए उन्होने कहा—'आह! तुम्हारे पेट में दर्द हो रहा है, यह तो मुझे मालूम नही था।'

'तुम जान कैसे सकोगे? जानते हैं इस मोहल्ले के रहने वाले लोग। कल से लेकर आज इस समय तक पेट मे एक बूंद पानी तक नहीं गया। लेकिन तुम इतनी रात के समय आये क्यों?'

'एक काम है।'

'ऐसा कौन-सा काम है?'

'बतलाता हूँ। पहले जरा तम्बाकू तो भर लाओ।'

हाराणचन्द्र की इस आज्ञा के कारण युवती की भभकती हुई आग पर मानो घी की छींट पड़ी। हाथ से कमरे के एक कोने की तरफ इशारा करके उसने कहा—'वहाँ सब समान रखा है। तम्बाकू पीना हो तो अपने हाथ से भर कर पीओ, मेरी हड्डियाँ मत जलाओ। मैं जाकर लेटती हूँ।'

कुछ संकुचित होकर हाराणचन्द्र ने कहा—'नही-नही, मैं तुम्हे नही कह रहा हूँ। मुझे ध्यान ही नही रहा था। तुम लेट जाओ, मैं स्वयं तम्बाकू भर लेता हूँ।'

कात्यायनी चारपाई पर लेट गई। हाराणचन्द्र ने हुक्का तैयार किया और गुड़गुडाते हुए वे आकर उसकी बगल में बैठ गये। बहुत देर तक वे तम्बाकू पीते रहे। बाद को धीरे-धीरे, बहुत धीरे से उन्होंने कहा—'कात्यायनी, मुझे दो रुपये देने होंगे।' यह बात हाराणचन्द्र ने अत्यन्त ही

कोमल स्वर में कही, फिर भी वे बराबर डरते रहे कि कहीं कण्ठ-स्वर में कर्कशता न आ जाय।

इस पर कात्यायनी कुछ बोली नहीं।

हाराणचन्द्र ने फिर कहा—'सुना नहीं तुमने? क्या सो गई हो? आज मुझे दो रुपये देने होंगे।'

कात्यायनी ने करवट बदली, परन्तु वह कुछ बोली नहीं। इससे हाराणचन्द्र को जरा-सा साहस हुआ। हुक्का रखकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा—'दोगी न?'

कात्यायनी बोली—'बेकार बक-बक क्यों कर रहे हो? रुपये कहाँ से दूँगी?'

'क्यों? तुम्हारे पास क्या हैं नहीं?'

'नहीं।'

'हैं क्यों नहीं? मुझे बड़ी जरूरत है। आज तुम्हें मुझ पर दया करनी ही होगी।'

'रुपये होंगे तब तो दया करूँगी।'

'कम-से-कम दो रुपये की तुम्हें कमी नहीं है। रुपये तुम्हारे पास हैं, इसका मुझे विश्वास है। रुपये की कमी के कारण मेरे घर के लोगों को खाने को नहीं मिल रहा है। अपने बीमार बच्चे के मुख का आहार निकाल कर मैंने खाया है। लज्जा और घृणा के कारण मेरा हृदय फटा जा रहा है। आज मेरी रक्षा करो कात्यायनी।'

'यह तो ठीक है, लेकिन रुपये होंगे तब तो मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी। मेरे पास एक पैसा भी नहीं है।'

अब हाराणचन्द्र गुस्से मे भर उठे। उन्होंने कहा—'हैं क्यों नहीं? इतने रुपये मैंने तुमको दिए, परन्तु आज मैं संकट में पड़ा हूँ तब दो रुपये भी नहीं निकाले जाते! लाओ कहाँ है कुन्जी? मैं सन्दूक खोलकर देखता हूँ कि रुपये हैं या नहीं।'

मानो किसी ने कात्यायनी की आँखों में आघात कर दिया। गुस्से के कारण उसकी आँखें लाल हो आई थी। तीक्ष्ण दृष्टि से हाराणचन्द्र की ओर देखती हुई वह बोली—'क्यों, तुम कौन होते हो सन्दूक की

चाबी माँगने वाले ?' वह नीच जाति की युवती थी। अवाच्य-कुवाच्य का ध्यान उसे था नहीं। अनायास ही वह पञ्चम स्वर में बोल उठी—'जब रुपये दिए थे तब रक्खे थे। वे रुपये इसलिए तो दिए नहीं थे कि जब तुम संकट में पड़ोगे तब मैं वापस कर दूँगी ?'

हाराणचन्द का मुँह तो बिल्कुल इतना-सा हो गया। कात्यायनी की आँखों से वे आँखें न मिला सके। आज भी वे सीधे मुँह से उसके सामने खड़े नहीं हो सके। अत्यन्त विनीत भाव से उन्होंने कहा—'तब भी, हममे-तुममें जो इतने दिनों का प्रेम है, कम-से-कम उसके कारण तो जरा-सा उपकार करना ही चाहिए।'

'खाक प्रेम है। ऐसे प्रेम में लगे आग। आज तीन महीने से कितने पैसे दिए हैं कि मैं तुमसे प्रेम करती रहूँ ?'

'छि: ! ऐसी बात मुँह से मत निकालो कात्यायनी। क्या हमारे-तुम्हारे प्रेम का मूल्य नहीं है ?'

'रत्ती भर नहीं। हम लोगों को जिससे पैसा मिलता है उसी से प्रेम होता है। तुम लोगों के घरों की स्त्रियों के समान तो मैं हूँ नहीं कि गले पर छुरी चलाने पर भी प्रेम करते ही रहना पड़ेगा ! तुम्हें छोड़कर क्या मेरी और गुजर नहीं है ? जहाँ रुपया है वहीं मेरा प्रेम है। जो मुझे पैसे देता है उसी का मैं सम्मान करती हूँ। जाओ, घर जाओ, इतनी रात में मुझे हैरान न करो।'

'क्यों कात्यायनी, बस हो चुका ? हमारे-तुम्हारे सदा के व्यवहार का खात्मा हो चुका है ?'

'वह सब तो बहुत पहले ही समाप्त हो चुका है। सामने आ जाने पर संकोच मालूम होता था, इससे आज तक मैं कुछ न कह सकी। आज जब तुमने बात चला दी है, तब मुझे साफ-साफ कहना ही होगा। तुम्हारा स्वभाव अच्छा नहीं है। चरित्र भी दूषित हो गया है। मेरे यहाँ अब तुम न आया करो। बाबू साहब के यहाँ का रुपया खा गए हो, इससे तुम्हारी जेल जाने की तैयारी थी। नौकरी आदि अब तुम्हारी कुछ है ही नहीं। क्या तुम किसी दिन किसी मामले में फँसना चाहते हो ? भाई, इससे तो अच्छा है कि तुम अभी से अपना रास्ता लो। मेरे घर में अब पैर मत

रखना।'

हाराणचन्द्र देर तक वहीं पर बैठे रहे। वे न तो जरा-सा हिले-डुले और न उसके मुंह से कोई आवाज ही निकली। बाद को धीरे-धीरे मुंह उठाकर वे कहने लगे—'अच्छी बात है; यही सही। अब मैं तुम्हारे यहाँ न आया करूँगा—परन्तु तुम्हारे ही कारण मेरी यह दुर्गति हुई है। तुम्हारे ही फेर में पड़कर मैं चोर बना, तुम्हारे ही कारण लम्पट और तुम्हारे ही कारण मैंने अपने स्त्री-पुत्र तक का मुँह नहीं देखा। आखिर मैं तुम्ही···'

हाराणचन्द्र से यह वाक्य पूरा न किया जा सका। जरा देर तक चुप रह कर शक्ति संचय करने के बाद उन्होंने कहा—'आज मेरी आँखें खुली हैं।'

अब कात्यायनी भी नरम पड़ी। जरा-सा खिसक कर बैठी और बोली—'भगवान करें कि तुम्हारी आँखें खुलें! हम सब तो नीच जाति की औरतें हैं; निम्न श्रेणी की। परन्तु इतना हमें भी ज्ञान है कि पहले आदमी का घर-द्वार है, स्त्री-पुत्र है, बाद को हम है। पहले आदमी को खाने-कपड़े का प्रबन्ध करना चाहिए, उसके बाद शौक और गाँजा-भाँग आदि की ओर ध्यान देना चाहिए। मैं तुम्हारा बुरा नहीं चाहती। तुम्हारी भलाई के लिए ही कहती हूँ कि तुम अब यहाँ मत आया करो। अफीम की दुकान में भी अब तुम्हें पैर न धरना चाहिए। तुम शान्ति से अपने घर में रहो, और घर-द्वार देखो। स्त्री-बच्चों के निर्वाह का प्रबन्ध करो, नहीं कोई नौकरी मिल जाय तो कर लो, जिससे तुम्हारे बाल-बच्चों को भूखों न मरना पड़े। बाद को जब तुम्हें इच्छा हो, तब मेरे यहाँ आना।' इतना कहकर कात्यायनी ने शय्या से उठकर बक्स खोला और दस रुपये निकाले। फिर हाराणचन्द्र के सामने उन्हें रखकर उसने कहा—'तुम ले जाओ ये रुपये!'

कात्यायनी को बिना किसी तरह का जवाब दिए हाराणचन्द्र मुँह नीचा किए हुए बहुत देर तक बैठे रहे। बाद को सिर हिलाकर उन्होंने कहा—'रहने दो, मुझे जरूरत नहीं है।'

कात्यायनी मुस्करायी। हाथ से हाराचन्द्र का मुँह ऊपर उठाती

हुई वह बोली—'जिसे कुछ मालुम न हो, उसके सामने जाकर तुम शेखी बघारोगे। ये रुपये न ले जाओगे तो कल तुम सबको भूखा रहना पड़ेगा, क्या तुम्हें यह मालूम है ?'

६

श्री सदानन्द चक्रवर्ती को गाँव के आधे आदमी सदा भैया कहकर पुकारा करते थे और आधे कहते थे सदा पगला। इस हलुदपुर ग्राम मे ही उनका मकान था। उनके पिता विशुद्ध परिपाटी के हिन्दू थे। उनका ख्याल था कि अग्रेजी सीखने के बाद आदमी के धर्म-भ्रष्ट हो जाने की आशका रहा करती है। इसी आशंका से उन्होने पुत्र को पढना-लिखना नही सिखाया। पढाने की उन्हें वैसी आवश्यकता भी नही मालूम हुई। उनके पास जो चार-छः बीघा जमीन थी, उसी से गुजारा हो सकता था। यह बात नहीं थी कि दूसरे की नौकरी किए विना रोटियाँ मिलना कठिन हो जायगा। इससे उन्होंने सोचा कि बेकार जाति क्यों गँवाई जाय।

सदानन्द भी अपने ढंग का ही आदमी था। वह खेती-बारी का काम किया करता, भजन गाता और इस द्वार से उस द्वार पर और उस द्वार से इस द्वार पर घूमता-फिरता। गाँव में ऐसा कोई भी मुर्दा नही होता था जिसे श्मशान ले जाने के लिए वह उत्सुकतापूर्वक न तैयार रहा करता। दूर के रिस्ते की एक बुआ के अलावा दुनिया मे अपना कहने को उसका दूसरा कोई कहीं था। इसलिए गांव भर के लोगो को उसने अपना बना लिया था। सभी लोग उसके आत्मीय थे, सभी के साथ उसने अपना कोई न कोई सम्बन्ध बना रखा था। किसी को वह काका कहता, किसी को भैया कहता, किसी को दीदी कहता और किसी को चाची। उसके इस प्रकार के व्यवहार के कारण उसके लिए सभी के घर के दरवाजे सदा खुले रहते।

बचपन में सदानन्द के पिता ने कन्या के पिता को बहुत-सा धन देकर उसका विवाह किया था। परन्तु भाग्य-दोष से एक वर्ष के भीतर ही वधू

की मृत्यु हो गई थी। तब से लेकर आज छः वर्ष बीत गए, वह अकेले ही जीवन व्यतीत करता आ रहा था, रुपये-पैसे का प्रबन्ध न हो सकने के कारण अथवा अनिच्छावश उसने दुबारा विवाह नहीं किया। जिस कुल में उनका जन्म हुआ था, वह इतना उत्तम नही था कि लोग दहेज देकर उसके यहाँ कन्या का विवाह करते। काफी रुपये दिये बिना विवाह नही हो सकता था इसलिए जब कोई विवाह की बात छेड़ता तब वह कहा करता कि इतने रुपये कहाँ मिल सकेंगे कि विवाह करूँ?

आज दोपहर के बाद से ही आकाश में बादलों की उमड़-घुमड़ हो रही थी। सब लोग हाथ-पैर समेट कर अपने-अपने घर में बैठे हुए थे। इससे चारों तरफ निस्तब्धता थी।

रासमणि बुआ ने पुकारकर कहा—'ललना, घर में एक बूँद भी पीने का पानी नहीं है। जाओ बिटिया, जल्दी से घाट पर से एक गगरी पानी भर लाओ।'

बगल मे गगरी दबाकर ललना गंगा जी के घाट पर पहुँची। जल भर कर दो पग भी वह अग्रसर न हो पाई थी कि बड़ी-बड़ी बूँदें पडने लगी। ललना तेजी से पैर बढ़ाती हुई चली। रास्ते मे ही सदानन्द का मकान था। चौपाल में बैठा हुआ वह भजन गा रहा था। नीचे ही से रास्ता गया हुआ था। ललना उधर से ही होकर लौटी जा रही थी। उसे देख-कर सदानन्द ने गाना बन्द कर दिया। ललना को पुकार कर उसने कहा—'तुम भीग क्यों रही हो ललना?'

जरा-सा हँसकर ललना ने कहा—'तुमने गाना क्यों बन्द कर दिया?' सदानन्द भी हँसा। हँसी और गीत तो आठों पहर उसके ओठों पर बने रहते थे। उसने संगीतमय स्वर में कहा—'गीत रुक गया है।' बाद को स्वाभाविक स्वर मे कहा—'जाने दो वह बात। तुम बेकार भीगो मत, जरा देर के लिए यहीं खड़ी हो जाओ।'

बरामदे मे ललना जाकर खड़ी हो गई।

कुछ देर तक ललना के मुँह की तरफ देखने के बाद सदानन्द ने कहा—'खड़ी क्यों हो, घर जाओ।'

'यह क्यों?'

'पानी जब और जोर से बरसने लगेगा, तब कैसे जाओगी?'

ललना ने सोचा कि बात तो यह ठीक ही है। दो कदम वह बढ़ी, बाद को फिर लौट पड़ी।

सदानन्द ने कहा—'क्यों लौट पड़ी हो।'

'कल रात में मुझे बुखार आ गया था। भीगने पर तबीयत अधिक खराब हो सकती है।'

'तो मत जाओ, यहीं खड़ी रहो।'

अब सदानन्द फिर अपनी धुन मे गाने लगा। उसके गीत का भाव था—

'सम्भव है तुझे कभी पा न सकूँगा, बेकार ही हाथ फैलाये खड़ा हूँ। कितना दर्द है मेरे हृदय में, इस बात को तुम कठोर-हृदया क्या समझ सकोगी? अब मेरी सोने की नौका डूबना ही चाहती है।'

गगरी भूमि पर रख कर ललना गीत सुन रही थी। मधुर कण्ठ से निकला हुआ मधुर गीत उसे बहुत ही प्रिय मालूम पड रहा था। बीच में ही जब वह रुक गया तब ललना ने कहा—'क्यों बन्द कर दिया गाना?'

'अब न गाऊँगा।'

'क्यों?'

'अब मन नही करता।'

ललना और कुछ नही बोली। यह बात सभी लोगो को मालूम थी कि सदा पगला दिन भर मे कितनी ही असम्भव और अप्रासङ्गिक बातें मुँह से निकाला करता है।

कुछ देर चुप रहने के बाद सदानन्द ने फिर कहा—'क्यों ललना, क्या शारदा अब तुम्हारे घर नही आया करता?'

ललना ने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया। कदाचित अपना उस समय का मुँह सदानन्द को दिखलाने की उसकी इच्छा नही थी। सदानन्द ने फिर पूछा—'क्या नही आता?'

'नही।'

'क्यों नही?'

'मालूम नहीं।'

सदानन्द ने फिर गाना शुरू कर दिया।

उसका गाना समाप्त हो गया। लेकिन वर्षा किसी तरह रुकना ही नही चाहती थी। बादल आकाश पर और जोर से चढे आ रहे थे। अब ललना ने गगरी उठाकर बगल में दबाई। यह देखकर सदानन्द ने कहा—'यह क्या ? कहाँ जा रही हो ?'

'घर जा रही हूँ।'

'इतने जोर की बारिश हो रही है, भीगती-भीगती जाओगी तो तबीयत खराब न हो जायगी ?'

'लेकिन क्या करूँ ?'

ललना जब चली गई तो सदानन्द ने फिर गाना शुरू किया।

७

हाराणचन्द्र ने जब गिनकर पूरे दस रुपये पत्नी के हाथ पर रक्खे तब शुभदा के मुख पर हँसी विकसित होकर भी न विकसित हो पाई। कुछ खिन्न-सी होकर सिर झुकाये हुए उसने पूछा—'कहाँ मिले ये रुपये तुम्हें ?'

हाराणचन्द्र भी रुपये हँसकर नहीं दे सका। कुछ देर तक निरुत्तर रहने के बाद उसने कहा—'शुभदा, तुम क्या समझ रही हो कि ये रुपये मैं चुराकर लाया हूँ ?'

शुभदा और भी नाराज हो उठी। उसके पापी अन्त.करण में यह बात शायद एक वार आई थी, परन्तु इसे क्या मुँह से निकालना उसके लिए सम्भव था ? ईश्वर न करें, बात यह ठीक ही हो। परन्तु इस दशा में क्या इन रुपयों को ग्रहण करना उसके लिए उचित है। चोरी का धन खाने से पहले शुभदा स्वयं भूख के मारे प्राण दे सकती है, परन्तु और सब लोग ? प्राणों से अधिक प्रिय पुत्र-कन्या ? शुभदा ने अनुभव किया—इस विषय पर विचार करने का समय अभी नही है। इसलिए वे रुपये उसने सन्दूक में रख दिये।

कुछ-कुछ सुविधा के साथ फिर दिन बीतने लगे। हाराण मुकर्जी आजकल बहुधा हलुदपुर मे दिखाई न पडा करते थे। घर आने पर

रासमणि जब कभी पूछ बैठती कि आजकल तू कहाँ रहा करता है रे ? तब हाराणचन्द्र जवाब देते—'कितने कार्य रहते हैं मुझे। नौकरी की चिन्ता में मैं सदा घूमता ही रहता हूँ।'

शुभदा भी समझती थी कि यही सम्भव है क्योंकि आजकल वे पैसे माँगने के लिए नहीं आया करते। 'कल लौटा दूँगा' यह कहकर अब ये दो आना, चार आना उधार नहीं ले जाया करते। परन्तु वास्तव में हाराणचन्द्र कहाँ रहा करते थे, यह बात मुझसे पूछी जाती तो मैं ठीक-ठीक बता देता; क्योंकि यह मैं जानता था कि सारे दिन आहार और विश्राम किये बिना ही वह नौकरी के फेर में घूमा करता था। कितने आदमियों के पास जाकर वह अपनी दुःख की कथा सुनाया करता था। कितने आढ़तियों, बल्कि साधारण दुकानदारों के पास जाकर वह प्रार्थना किया करता था कि यदि आज्ञा हो तो मैं आपका बही-खाता लिख जाया करूँ, किन्तु किसी ने भी उसकी प्रार्थना स्वीकार न की। उस ओर के सभी लोग उसे पहचानते थे। वे सब उसकी कीर्ति की कहानी भी सुन चुके थे। इससे किसी को भी उसका इतना विश्वास नहीं होता था कि वह उसे नौकर रख ले। सन्ध्या हो जाने पर मुँह सुखाये हुए लौटकर जब वे घर आते तब शुभदा दुःखी भाव से पूछती—'आज भोजन कहाँ किया तुमने ?'

इस सवाल के जवाब में हाराणचन्द्र हँसने की कोशिश किया करते। यह कहता—'क्या भोजन का अभाव है मुझे ? कौन नहीं जानता मुझे ?'

इस पर शुभदा कुछ न बोलती, वह चुप रह जाती। क्रमशः उसकी कलसी का जल सूखता जा रहा था। रुपये समाप्त होते जा रहे थे। दो ही एक दिन का खर्च और था। परन्तु मुँह खोलकर शुभदा यह बात स्वामी से कह नहीं सकती थी। किसी से भी वह बात बतलाने की इच्छा उसकी नहीं थी। केवल मन-ही-मन वह खर्च चलाने के लिए तरह-तरह की योजनाएँ सोचती रही।

आज तीन दिन के बाद बहुत रात बीत जाने पर स्वामी के थके हुए दोनों पैरों को दबाते-दबाते शुभदा मन-ही-मन बहुत तर्क-वितर्क करती रही। बाद को बाध्य होकर उसे मुँह खोलना ही पड़ा। वह बोली—'अब

कुछ नहीं है, सब रुपये समाप्त हो गये।'

आँखें बन्द कर बहुत ही साधारण भाव से हाराचन्द्र ने कहा—'दस रुपये चल ही कितने दिनों तक सकते है।'

दूसरे दिन सवेरा होने से पहले ही हाराणचन्द्र चले गये। ललना सदा की भाँति घर का काम-काज करने लगी। रासमणि भी, जैसा कि उनका नियम था, स्नान करके आ गई और मिट्टी के महादेव बनाकर पूजा करने लगीं। केवल शुभदा ही ऐसी थी, जिसके हाथ-पाँव एक प्रकार से खाली हो गये थे। मुँह सुखाये हुए वह कहीं बैठ जाती तो वहाँ से उठकर कहीं खड़ी हो जाती और काफी देर तक चुपचाप खड़ी ही रहती।

ललना ने देखा कि आठ बज रहे हैं, किन्तु माँ अभी तक इधर-उधर में अपना समय व्यतीत कर रही है, प्रात:कृत्य से निवृत्त होने तक की ओर उनका ध्यान नहीं गया। इससे वह बोली—'माँ, आज अभी तक तुम घाट पर नहीं गई हो?'

'अब जा रही हूँ।'

कुछ देर के बाद ललना फिर लौटकर आई। उसने माँ को फिर वहीं पूर्ववत् बैठी हुई देखा तब आश्चर्य से वह बोली—'हुआ क्या है माँ?'

'कुछ नहीं।'

'तो इस तरह बैठी क्यों हो?'

'क्या करूँ?'

'क्यों, स्नान नहीं करोगी? खाना न बनाओगी?'

शुभदा ने अपने दोनों ही कातर नेत्र कन्या के मुख पर डाल दिये। डरते-डरते वह बोली—'आज कुछ भी नहीं है।'

'क्या नहीं है?'

'कुछ भी तो नहीं है। घर में मुट्ठी भर चावल तक नहीं है।'

ललना का मुख सूख गया। वह बोली—'तब क्या होगा माँ? लड़के खायेंगे क्या?'

दूसरी ओर मुँह फेर कर शुभदा बोली—'भगवान जाने!'

कुछ देर बाद ही शुभदा फिर बोली—'ललना, क्या तू एक बार अपनी बिन्दो बुआ के पास न हो आवेगी?'

'क्यों माँ ?'

'शायद वे कुछ दें।'

ललना चली गई। सुमदा की आँखों से पानी गिरने लगा। इस तरह की बात उसने और कभी नही कही। इस तरह भिक्षा माँगने के लिए उसने कन्या को और कभी नहीं भेजा था। यही सोच-सोचकर उसका मन दुखी हो रहा था। उसे लज्जा आ रही थी, साथ ही कुछ-कुछ अभिमान भी हो रहा था। अभिमान किसके ऊपर हो रहा था ? पूछने पर सम्भवत. वह स्वामी के मुख का ध्यान करती और ऊपर की ओर अँगुली उठाकर कहती —'उनके ऊपर।'

बड़ी देर तक मुँह पर हाथ रक्खे हुए सुमदा वही बैठी रही। प्राय: ग्यारह बज रहे थे। इतने में छलनामयी मिट्टी की एक छोटी-सी गुड़िया हाथ मे लिए उसके सारे बदन में कपड़ा लपेटते-लपेटते और उस हाथ-पैर से हीन धड की गुड़िया को माला से सजाते हुए आई और वहीं खड़ी हो गई।

'माँ, खाने को दो।'

सुमदा बेटी के मुँह की तरफ देखने लगी। वह कुछ बोली नही।

छलना फिर बोली—'समय हो गया है माँ, खाने को दो।'

तो भी उत्तर नही मिला।

इस हाथ की गुड़िया उस हाथ में लेकर छलना जरा और भी ऊँचे स्वर से बोली—'खाना शायद अभी तक नही बना ?'

सिर हिलाकर सुमदा बोली—'नहीं।'

'बना क्यों नहीं ? शायद तुम काफी दिन चढ़े तक सोती रही हो ?' बाद को उसके मन मे न जाने कौन-सी बात आई, वह रसोईघर में गई और अत्यन्त ही विस्मित होकर चिल्ला पडी—'शायद अभी चूल्हे में आग भी नहीं पड़ी है ?'

सुमदा बाहर से उद्विग्न होकर बोली—'अब जलाने जा रही हूँ।'

बाहर आकर छलना खड़ी हुई। माँ का मुख देख कर अब शायद वह भी खिन्न हो गई। पास ही बैठकर वह बोली—'माँ, अभी तक कुछ बना क्यों नही ?'

'अब बनेगा।'

'माँ, आज इतनी उदास क्यों हो ?'

इतने में भीतर से रोग-ग्रस्त माधव ने क्षीण स्वर से पुकारा—'माँ !'

शुभदा बहुत ही उतावली के साथ उठकर खड़ी हो गई।

छलनामयी भी उठकर खड़ी हो गई। वह बोली—'माँ, तुम बैठो, मैं जाकर माधव के पास बैठती हूँ।'

'अच्छा, जाओ बेटी।'

इधर घर से निकलकर ललना भवतारण गंगोपाध्याय के यहाँ गई और खिड़की के रास्ते से उसने घर मे प्रवेश किया। परन्तु विन्ध्यवासिनी वहाँ नहीं थी। पिछली रात में ही वह ससुराल चली गई थी। उसे अचानक चला जाना पड़ा, वर्ना एक बार शुभदा से भेंट करके ही वह जाती।

मुँह सुखाये हुए ललना वहाँ से लौट आई। रास्ते में किसी तरह उसके पैर उठना ही नहीं चाहते थे। गंगोपाध्याय महोदय के घर जाते समय भी लज्जा के भार से वह प्रायः दबी जा रही थी और उसके पैर उठाये नहीं उठते थे। परन्तु वहाँ से उसे जब खाली हाथ लौटना पड़ा तब और भी अधिक लज्जा मालूम पड़ने लगी। रास्ते में किनारे पर बड़ी देर तक वह एक जगह खड़ी रही। बाद को न जाने क्या सोचकर उसने दूसरा रास्ता पकड़ लिया और वह गंगा जी के घाट की तरफ चली। पास ही चक्रवर्ती-परिवार का घर था। बाहर गोशाला के पास सदानन्द एक बछड़े को तरह-तरह के नामों से पुकार-पुकारकर उसे प्यार कर रहा था। वहीं जाकर ललना पास ही खड़ी हो गई। उसकी तरफ मुँह करके सदानन्द ने कहा—'ललना तुम हो !'

'हाँ ! बुआ जी घर में हैं ?'

'नहीं, वे अभी ही कहीं गई हैं ?'

ललना इधर-उधर करके पीछे हट गई। सदानन्द ने बछड़े को छोड़ दिया। ललना के मुँह की तरफ देखते हुए वह बोला—'क्या बुआ जी से कुछ काम था ?'

'हाँ !'

'वे तो घर में हैं नहीं, मुझसे बतलाने से क्या वह न हो सकेगा ?'

ललना भी यही बात सोच रही थी। परन्तु सदानन्द के यह प्रश्न करते ही लज्जा के कारण उसका सारा मुखमण्डल लाल हो गया। घर में कुछ खाने को नहीं है, इसलिए आई हूं—छि: ! यह बात भी क्या कहने योग्य है ? क्या एक दिन खाये बिना न चलेगा ! किन्तु और सब लोग ? शुभदा के मन में भी एक दिन ठीक यही बात आई थी। आज ललना के मन मे भी यह बात आई, किन्तु उसका स्वर नहीं खुला। जो व्यक्ति कभी इस प्रकार की दशा में पड़ चुका है, वही जानता है कि इसे मुँह से निकालना कितना कठिन है। केवल वही यह अनुभव कर सकता है कि एक भला आदमी जब यह बात कहने के लिए किसी के पास जाता है तब उसके हृदय में कितना आन्दोलन, कितना घात-प्रतिघात होता है। बात मुँह से निकलने के पहले जिह्वा की एक-एक शिखा अपने आप ही पंगु होकर अन्दर ही अन्दर लिपट जाती है।

ललना मुँह खोलकर कुछ कह न सकी। सदानन्द शायद उसके मन का भाव बहुत कुछ भाँप गया। उसका मुख देखकर ही सदानन्द ने उसके अन्त.करण की अवस्था का बहुत कुछ अनुमान कर लिया। इससे उसने ललना का हाथ पकड़ लिया। वह पागल था, सभी लोग जानते थे कि पागल सदानन्द की बुद्धि कभी ठिकाने पर नहीं रहती। वह ऐसे कितने ही काम कर डालता था, जो दूसरे लोग नहीं कर सकते थे। जिस काम के लिए दूसरों को संकोच का अनुभव हुआ करता था, उन्हें वह धड़ाके से कर डालता था। जो बात दूसरों की दृष्टि में अमान्य होती उसे वह बहुधा स्वीकार हो जाती। यही कारण था कि उसने स्वच्छन्द भाव से ललना का हाथ पकड़ लिया। हँसते-हँसते वह बोला—'शायद आज ललना अपने सदा भैया से लज्जा कर रही है। सदा पागल से भी क्या लज्जा करनी होती है ?' इतना कहकर उसने हाथ छोड़ दिया और कहा—'बात क्या है, क्यों नहीं बतलाती हो ?'

सदानन्द के कण्ठ का स्वर और उसकी बातों का भाव एक ही तरह का था। हँसते-हँसते भी वह कभी-कभी ऐसी बात कह डाला करता था, जिसे सुनकर आँखों मे पानी अपने आप उमड़ आता था। अस्तु, सदानन्द के इस बार के प्रश्न का भी ललना ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब उसने मुँह

उठाकर बहुत ही गम्भीर भाव धारण कर लिया और कहा—'क्यों री ललना, कुछ हुआ है क्या ?'

नीचा मुँह किये हुए आँखें पोंछकर रुँधे हुए कण्ठ से ललना बोली—'मुझे एक रुपया दो।'

सदानन्द पहले की तरह, वल्कि पहले से भी अधिक जोर से हँस पड़ा। वह बोला—'यही बात थी ! यह बात भी शायद सदा भाई से कहने लायक नहीं है ? परन्तु रुपया लेकर तुम करोगी क्या ?'

यह बतलाने में भी ललना को लज्जा आ रही थी। जरा-सा इधर-उधर फिरा के लज्जा के कारण और भी लाल होकर बोली—'घर मे बाबू जी नही हैं।'

सदानन्द भीतर घुसा और वहाँ से लौटकर एक की जगह पाँच रुपये उसने ललना के हाथ पर धर दिये। बाद को वह बोला—'अच्छा आदमी हो तो उससे लज्जा भी करनी होती है। पागल से क्या लज्जा ?' बाद को दूसरी ओर मुँह फेर कर वह जरा-सा हँसा और बोला—'जब कभी कोई काम लगे तब पहले ही आकर इस दीवाने पागल से कहा करो। क्यों, कहा करोगी न ?'

ललना ने जब देखा कि मेरे हाथ पर कई रुपये रख दिये गये हैं, तब वह बोली—'क्या होगा इतने रुपयों का ?'

'रख देने पर सड़ तो जायँगे नहीं ये !'

'तो क्या हुआ, इतने रुपयों की जरूरत हमें नहीं है।'

सदानन्द ने जब देखा कि ललना रुपये लौटाने जा रही है, तब उसने उसका हाथ फिर पकड़ लिया। कातर भाव से वह बोला—'छि: ! बचपना मत करो। ये रुपये यदि काम न आवें तो और किसी दिन आकर उन्हें लौटा जाना। यह किसी से बतलाना भी नही। अगर बतलाना बहुत जरूरी हो तो कहना कि पागल सदानन्द ने एक आना प्रति रुपया के हिसाब से ब्याज पर दिया है।'

दिन का कुल समय इसी तरह बीत गया। सब लोगों ने भोजन किया किन्तु शुभदा ने उस दिन जल तक नही ग्रहण किया। रासमणि ने बहुत बकझक की, ललना ने बहुत आग्रह किया, परन्तु उस दिन किसी तरह भी

उसने कोई चीज मुंह में नही डाली ।

सन्ध्या हो जाने के बाद हाराणचन्द्र ने घुटनों तक धूल लपेटे हुए घर मे प्रवेश किया। माथे के बाल उनके रूखे होकर अस्त-व्यस्त हो गये थे। उनकी धोती की लांघ में एक ओर तो लगभग दो सेर चावल था और एक ओर थोडा-सा नमक, थोड़े से आलू, थोडे से परवल तथा और न जाने कौन-कौन सी चीजें बँधी हुई थी। वह खोलते हुए शुभदा रो पड़ी। चावल भी एक ही तरह का नही था। महीन, मोटा, अरवा, सेल्हा, सब मिला हुआ था। शुभदा ने अच्छी तरह समझ लिया कि मेरे स्वामी ने हम लोगो के लिए यह सब द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगकर इकट्ठा किया है।

८

सन्ध्या होने से थोडी देर पहले माधव ने कहा—'वडी दीदी, शायद अब मैं अच्छा न हो सकूंगा।'

ललना ने स्नेहपूर्वक भाई के माथे पर हाथ रखकर उसे प्यार किया और बोली—'क्यों भैया, तुम अच्छे क्यों न हो जाओगे? दो ही दिनों के बाद तुम अच्छे हो जाओगे।'

'कितने दो दिन वीत गये दीदी, कहाँ अच्छा हुआ मैं?'

'लेकिन इस बार तुम अच्छे हो जाओगे।'

'अच्छा, अगर इस बार भी मैं न अच्छा हुआ तो?'

'नहीं, इस वार तुम जरूर अच्छे हो जाओगे।'

'अगर न होऊँ?'

ललना ने भाई के दोनों ही क्षीण और दुर्बल हाथ अपने हाथ में ले लिए। बाद को कुछ गम्भीर होकर वह बोली—'छि:! इस तरह की वात मुँह में न आने देनी चाहिए।'

माधव ने और कुछ नही कहा, वह चुप रह गया।

थोडी देर के बाद ललना ने कहा—'माधव, क्या कुछ खायेगा तू?'

सिर हिलाकर माधव ने कहा—'नही।'

थोड़ी देर के बाद ही दवा खिलाने का समय हो गया। काँच के एक

नन्हें से गिलास में जरा-सा चूर्ण डालकर ललना ने उसे माधव के ओठ से लगाया और बोली—'इसे खाओ !'

माधव ने पहले की तरह सिर हिलाया। उसने सूचित किया कि दवा मैं किसी तरह खाऊँगा नहीं। ऐसा वह प्रायः किया करता था। दवा के कड़वेपन के कारण वह उसे खाने में बहुत अधिक आपत्ति किया करता था। परन्तु जरा-सा आग्रह करने के बाद ही उसे खा लेता था।

सदा की तरह दवा खाने के सम्बन्ध मे जोर देती हुई ललना बोली—'छिः ! इस प्रकार की जिद्द न करनी चाहिए। दवा खा लो।'

गिलास हाथ मे लेकर माधव ने सारी दवा नीचे उड़ेल दी।

माधव ने ऐसा और कभी नहीं किया था। उसके इस कृत्य से ललना विस्मित और क्रुद्ध हुई। 'यह क्या किया तुमने माधव ?'

'अब मैं दवा न खाऊँगा।'

'क्यों ?'

'क्या करूँगा बेकार दवा खाकर ? अच्छा तो मैं होऊँगा नही, बेकार दवा खाकर क्या करूँ ?'

'यह किसने कहा कि तुम अच्छे नही होओगे ?'

माधव इस बात पर कोई उत्तर नही दिया।

ललना पास आ गई। रोगशय्या के पास बैठकर वह माधव के शरीर पर हाथ फेरने लगी। बाद को वह बोली—'माधव, क्या तुम मेरी बात नही मानोगे ?'

जरा-जरा सी बातों के लिए रोष आ जाना बालकों के लिए स्वाभाविक है। माधव इस नियम का अपवाद तो था नहीं। आँखों में आँसू भरकर उसने कहा—'मेरी बात कोई मानता नही, मैं भी किसी की बात न मानूँगा।'

'कौन तुम्हारी बात नही मानता ?'

'मानता ही कौन है ? मेरे एक बात पूछने पर माँ अप्रसन्न होती हैं, बाबू जी अप्रसन्न होते हैं, बुआ जी बोलती ही नही, तुम भी नाराज होती हो। तब मैं कोई बात क्यो सुनूँ ?'—माधव के नेत्रों से आँसू टपकने लगे।

ललना ने स्नेहपूर्वक उसके आँसू पोंछ दिये। वह बोली—'मैं मानूँगी तुम्हारी बात।'

'तो बताओ, क्या मुझे सदा इसी प्रकार चारपाई पर पड़ा रहना होगा? मैं कभी अच्छा होऊँगा ही नहीं?'

'अच्छे क्यों न हो जाओगे भैया?'

'तो क्या⋯?'

ललना का ओठ जरा-सा काँप उठा। माधव के इस 'तो क्या' के उत्तर में वह जरा भी मुँह न खोल सकी।

माधव ललना के मुंह की तरफ थोड़ी देर तक देखता रहा। बाद को उसने कहा—'बड़ी दीदी, हमारे छोटे भाई की तबीयत खराब थी। परन्तु वह अच्छा नहीं हो सका। इसी तरह पड़े-पड़े वह मर गया था। बाबू जी रोये, माँ रोईं, बुआजी रोईं, तुम रोईं, घर के सभी लोग रोये। माँ आज भी रोया करती हैं। परन्तु यादव लौटकर आया नहीं। उसी तरह अगर मैं भी मर जाऊं?'

दोनों हाथों से ललना ने अपना मुँह ढक लिया। अगर और समय होता तो वह माधव को डाँटती, उसका मुँह दबा लेती, परन्तु उस समय वह ऐसा नहीं कर सकी। माधव भी कुछ देर तक चुप रहा। बाद को उसने फिर कहा—'क्यों बड़ी दीदी, बतलाती क्यों नहीं हो? मैं मर जाऊँगा तो क्या होगा?'

ललना ने मुँह पर से हाथ नहीं हटाया। कहा—'कुछ नहीं, हम लोग केवल रोकर रह जायेंगे।' इस समय शायद वह रो रही थी।

माधव ललना के उस समय के मनोभावों को कुछ समझ पाता था या नहीं, यह कहा नहीं जा सकता परन्तु आज उसने मानो यह निश्चय कर रक्खा था कि अपनी सारी शंकाओं का समाधान किये बिना मैं दीदी को छोड़ूँगा नहीं। कितने दिनों से वह व्याकुल था बहुत बातें पूछने के लिये। इससे वह फिर बोला—'दीदी, कहाँ जाना होता है मरने पर?'

ऊपर की ओर ताकती हुई ललना बोली—'वहीं, आकाश के ऊपर।'

'आकाश के ऊपर!' बालक बहुत ही विस्मित हुआ। उसने कहा—'परन्तु वहाँ मैं रहूँगा किसके पास?'

दूसरी तरफ ताकती हुई ललना बोली—'मेरे पास।'

दूसरे दिन से माधव के स्वभाव में परिवर्तन हो गया। एक तो वह यों ही शान्त था, दूसरे उसमें कुछ और भी शान्ति आ गई। अब वह दवा खाने में आपत्ति नहीं करता था। पहले तो किसी-किसी दिन वह अकड़ भी जाया करता था। कभी कहता—'वह खाऊँगा, वह न खाऊँगा ?' परन्तु आजकल उसमें ये सब बातें नहीं रह गई थीं। आजकल वह सदा ही प्रसन्न रहा था। माँ जब कभी पूछती—'माधव, क्या तू कुछ खायगा ?' तब वह कहता, 'लाओ दो।'

'क्या दूँ ?'

'जो भी हो—लाओ।'

जब कभी चारपाई के पास जाकर बड़ी दीदी बैठ जाती तब क्या पूछना था ! भाई-बहन में चुपके-चुपके बहुत-सी बातें होतीं, बहुत से विषयों के सम्बन्ध में परामर्श होता, किन्तु जैसे ही कोई तीसरा आदमी वहाँ पैर रखता, वे चुप हो जाते।

इधर चार-छः दिन से हाराणचन्द्र के परिवार के लोगों में उतना कलह नहीं होता था। जब किसी तरह की कठिनाई मालूम पड़ती, ललना दो-एक रुपया निकालकर दे देती। धुमदा जानती थी कि ये रुपये कहाँ से आ रहे हैं। रासमणि समझती थी कि रुपये हाराण कहीं से ले आ रहा है। इधर हाराणचन्द्र सोचते थे कि बुरा ही क्या है ? रुपये जब कहीं से आ रहे हैं तो आते रहें। मैं ही कहाँ से ले आऊँगा ? परन्तु एक बात प्रायः उनके मन में आया करती थी। वह बात थी अफीम की कमी के सम्बन्ध की। किसी-किसी दिन उन्हें इस बात का डर होता था कि मानो अफीम खाने की आदत बिलकुल ही छूटी जा रही है। परन्तु उसे छोड़ देने के सिवा उन बेचारों के पास और उपाय ही क्या था ? वे सोचते कि अपनी इस आदत को अगर मैं बहाल ही रखना चाहूँ तो उसके लिए अफीम कहाँ मिलेगी मुझे ? जिस तरह भी हो और जो भी कर्म करने से हो, मुझे जब पेट भर अन्न मिलता जा रहा है, तब अफीम के लिए मैं अपने मन को खराब न करूँगा। अच्छे दिन आने पर फिर सब ठीक हो जायगा। अभी मैं जैसा हूँ, ैसा ही रहूँगा।

कुछ दिनों के बाद सदानन्द की बुआ ने एक दिन आग्रह किया कि भैया, मुझे एक बार काशी घुमा ले आओ। कब मर जाऊँ इसका ठौर नहीं है। इस जीवन में कम-से-कम एक बार काशी में श्री विश्वेश्वरनाथ का दर्शन तो कर लूँगी।

सदानन्द बुआ की कोई भी बात मानने मे आगा-पीछा नही किया करता था। यह बात मानने मे भी उसने आना-कानी नही की। दो ही एक दिन के बाद काशी की यात्रा निश्चित हुई। जिस दिन उसकी यात्रा थी, 'ललना-ललना' पुकारता हुआ वह सीधा ऊपर चला गया। ललना उस समय ऊपर ही थी। सदानन्द को आता देखकर वह उठकर खड़ी हो गई। सदानन्द पाकेट में पचास रुपये लिये हुए था। उन्हे निकालकर उसने एक तकिये के नीचे रख दिया। बाद को उसने कहा—'आज हम लोग काशी जा रहे हैं। कब तक लौटेंगे, यह कुछ ठीक नही है। आवश्यकता पड़ने पर ये रुपये खर्च कर लेना।'

आश्चर्य करके ललना बोल उठी—'इतने रुपये!'

'पचास रुपये कुछ बहुत नही होते हैं। देखने में ये रुपये अधिक जरूर मालूम होते हैं, लेकिन खर्च के समय इतने ज्यादा न मालूम पड़ेंगे।'

'लेकिन इतने...!'

यह वाक्य समाप्त करने का अवसर न देकर सदानन्द ने हाथ से न जाने कैसा एक प्रकार का इशारा किया और वह एक बारगी नीचे आकर रसोई घर में शुभदा के पास जा बैठा। उसने कहा—'चाची जी, आज हम लोग काशी जायेंगे।'

यह बात शुभदा ने सुनी थी। उसने कहा—'कब तक लौटेंगे?'

'यह मैं कैसे कहूँ? परन्तु बुआजी जब अच्छी तरह दर्शन आदि कर लेंगी तब शायद लौट आवेंगे।'

एक लम्बी साँस लेकर शुभदा ने कहा—'अच्छी बात है भैया, मैं आशीर्वाद देती हूँ कि तुम कुशलतापूर्वक यह यात्रा समाप्त कर सको।'

जोर से हँसकर सदानन्द वहाँ से चलता हुआ। दूसरे दिन ललना ने आधे रुपये तो अपने पास रख लिए और आधे माता को दे दिये। उसने कहा—'माँ, जाते समय सदा भैया ये रुपये देते गये हैं।'

नेत्रों को विस्फारित करके शुभदा वे रुपये गिनने लगी। उन्हें गिन चुकने के बाद बेटी की ओर देखकर उसने कहा—'शायद उस जन्म में सदानन्द मेरा कोई था !'

सिर हिलाकर ललना ने कहा—'मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।'

'इतने रुपये क्या आदमी किसी को दे सकता है ?'

ललना ने उत्तर नहीं दिया।

'ललना, क्या सदानन्द पागल है ?'

'क्यों ?'

'तब वह ऐसा क्यों करता है ?'

'दुखिया का दुःख देखकर दुःखी होना क्या पागल का काम है ?'

'तब लोग उसे पागल क्यों कहा करते हैं ?'

जोर से हँसकर ललना ने कहा—'लोग यों ही कहा करते हैं।'

हाराण मुकर्जी के परिवार में आजकल एक प्रकार से कोई भी क्लेश नहीं था। भोजन-वस्त्र आराम से लोगों को मिल जाया करता, परन्तु दस आदमी दस तरह की बातें कहने लगे।

कोई कहता, इस साले हाराण ने नन्दी महोदय के बहुत-से रुपये खा लिये हैं, कोई कहता, यह साला आजकल बड़ा आदमी बन बैठा है। कोई कहता, कुछ है नहीं, दोनों समय चूल्हा नहीं जलता। इसी प्रकार जिसके मुँह में जो कुछ आता, वही वह कह जाता। जो लोग पराये थे, उन्हें हाराणचन्द्र के सम्बन्ध में कुछ कम कौतूहल था। परन्तु जिन लोगों से कुछ आत्मीयता थी वे ही अधिक कौतूहल में आकर मुखोपाध्याय परिवार के सम्बन्ध में छोटे-बड़े दोष निकालने का प्रयत्न करने लगे।

एक दिन दुपहरी में एकाएक कृष्णादेवी प्रकट हुईं। हाराणचन्द्र के घर में पैर रखते ही उन्होंने कहा—'कहो बहू, क्या हो रहा है इस समय ? भोजन आदि हो गया है न ?'

शुभदा ने कहा —'हाँ, अभी तो अवकाश मिला है इससे।'

तब पान के साथ तमाल-पत्र कूँचते-कूँचते और पीक फेंकते-फेंकते कृष्णादेवी एक उपयुक्त स्थान पर बैठ गईं। उन्होंने कहा—'क्यों बहू, हाराण आजकल क्या काम कर रहा है ?'

'करेंगे क्या, नौकरी आदि प्राप्त करने के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं।'

'तो गृहस्थी का खर्च कैसे चल रहा है?'

शुभदा ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

कृष्णा ने फिर कहा—'लोग कहा करते हैं कि हाराण मुकर्जी ने नन्दी बाबू के यहाँ के बहुत-से रुपये मार लिये हैं। आजकल वह बड़ा आदमी हो गया है, उसे खाने की क्या चिन्ता है? परन्तु मुझे तो सब कुछ मालूम है, इसीलिए मैं कह रही हूँ कि गृहस्थी का खर्च किस तरह चलता है आजकल?'

टालमटोल करके शुभदा ने कहा—'यों ही चल जाता है किसी प्रकार।'

'ब्राह्मणपाड़ा की जो हरामजादी कुत्ती है, उसी की बदौलत तो यह दुर्घटना हुई है। मन में आता है कि उस मुँहजली को गोठिल-गँडासे से काटूँ।'

इस बात की ओर कर्णपात तक न करके शुभदा ने कहा—'क्यों दीदी, तुम्हारा भोजन हो गया है?'

'हाँ बहन, मैं भोजन कर चुकी हूँ। परन्तु उसी पापिन के कारण हुआ है यह सर्वनाश। हाराण बिलकुल नासमझ आदमी है न, इसीलिए इसने उसके जाल में पैर डाले थे। तीन-तीन हजार रुपये जब उसने मारे तो सौ-दो-सौ रुपये लाकर तो स्त्री के हाथ पर रख देता। उस अवस्था में भी तो कुछ दिन तक निर्वाह हो सकता था परिवार का।'

शुभदा ने कहा—'क्यों दीदी, आज क्या बनाया था खाने को?'

'खाने को क्या बनाया बहन! आज देर हो गयी थी, इसीलिए केवल खिचड़ी बनाई थी मैंने और कुछ बना नहीं सकी। परन्तु सोचने की बात है कि उस राँड को जरा ईश्वर तक का भय न हुआ। बेचारे ने दो रुपयों के लिए जब इतना हाथ-पैर जोड़ा तब जाकर उसने बक्से से निकालकर दिया। परन्तु क्या भगवान् कहीं चले गये हैं। ब्राह्मण को जब उसने इस तरह मटियामेट कर डाला है, तुम्हारी जैसी सती स्त्री के आँसू बहाये हैं, तब क्या इसके लिए उसे कोई दण्ड न मिलेगा? तुम देख लेना, मैं कहे देती हूँ...।'

शुभदा उतावली के साथ बोल उठी—'क्यों दीदी, बिन्दो इस तरह अचानक क्यों ससुराल चली गई ?'

'शायद उसके श्वसुर को एकाएक हैजा हो गया था। परन्तु अब तुम गृहस्थी का प्रबन्ध कैसे करोगी ?'

'मैं क्या कर सकती हूँ ! भगवान् जो कुछ करेंगे, वही होगा।'

कृष्णा ने जरा-सी लम्बी साँस लेकर कहा—'यह तो होगा ही। परन्तु सबसे अधिक चिन्ता का कारण है तुम्हारी छोटी लड़की। धीरे-धीरे बड़ी हो गई है। अब यदि उसका विवाह नहीं होता तो बुरा भी मालूम पड़ेगा और दस आदमी दस तरह की बातें कहेंगे। उसके विवाह के लिए क्या कोई प्रबन्ध हो रहा है ?'

शुभदा जब मुरझाये हुए मुख से एक लम्बी साँस ले रही थी, तब ललना आकर उस जगह पर पहुँच गई। छलना की चर्चा कुछ तो वह सुन पाई थी और कुछ अनुभव करके वह समझ गई थी कि बंगाली की कन्या का विवाह हुए बिना निर्वाह नहीं है, चाहे माता-पिता उसका विवाह सुख से करें या दुःख से करें। विवाह न कर सकने पर सम्भवतः जाति से अलग होना पड़ता है।'

९

शुक्ल पक्ष की एकादशी की रात के दो पहर बीत चुके थे। भागीरथी के तट पर एक टूटा-फूटा शिवजी का मन्दिर था। आस-पास झाड़ियाँ उगे होने के कारण उसका प्रायः आधा भाग छिपा हुआ था। उसी मन्दिर के चबूतरे पर एक बाईस वर्ष का युवक बहुत देर से बैठा हुआ था। मानो वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा था।

युवक का नाम था शारदाचरण राय। उस हलुदपुर नामक ग्राम के ही एक धनवान आदमी का वह एकमात्र पुत्र था। पढ़ा-लिखा कहाँ तक था वह, यह तो ठीक-ठीक मालूम नहीं है, परन्तु उसके बुद्धिमान्, 'व्यवहार-कुशल तथा काम-काज में निपुण होने के सम्बन्ध में किसी को संदेह करने का कोई कारण नहीं था। पिता के वृद्ध हो जाने के कारण घर-गृहस्थी का

सारा काम-काज वह स्वयं चलाता आ रहा था।

शारदाचरण की माता जीवित नहीं थी। वे जब तक संसार में थी, तब तक हाराण मुकर्जी के परिवार के साथ उनके परिवार की बड़ी ही घनिष्ठ आत्मीयता थी। रासमणि तथा शारदा की माता में परस्पर बड़ा प्रेम था। अब उनके जीवन का भी अन्त हो गया था, साथ-ही-साथ इन दोनों परिवारों के पारस्परिक प्रेम तथा आत्मीयता का भी अन्त हो गया था। विशेषतः शारदाचरण के पिता राममनोहर बाबू दरिद्र के साथ किसी प्रकार का भी सम्बन्ध रखना उचित नहीं समझते थे।

यहाँ जरा-सा ललना का हाल बतला देता हूँ। बात यह है कि इस कथानक में उससे हमारा बड़ा ही मतलब है। ललना जब छोटी बालिका थी, तभी से शारदा से उसकी बहुत बनती थी। बाद को ललना का विवाह हुआ। हाराण बाबू की आर्थिक अवस्था उस समय शोचनीय नहीं थी। जहाँ तक सम्भव था, खूब धूमधाम के साथ उन्होंने बड़ी कन्या का विवाह किया था। परन्तु दुर्भाग्यवश दो वर्ष के भीतर ही विधवा होकर वह पिता के घर लौट आई।

ललना का शारदाचरण के प्रति जो प्रेम था, उसके विधवा हो जाने पर वह स्थायी रहा। उस अनुराग में कमी न होकर दिन दिन वृद्धि ही होती गई। जैसे-जैसे उन दोनों की अवस्था बढ़ने लगी, वैसे-ही-वैसे वे यह भी अनुभव करने लगे कि हम दोनों में जो प्रेम है, उसका परिणाम कुछ सुख-दायी न होगा। शारदाचरण भले ही इस बात का अनुभव न करता रहा हो, किन्तु ललना अब इसे भली-भाँति हृदयङ्गम करने लग गई थी। इसका फल यह हुआ कि ललना ने धीरे-धीरे प्रेम की दूकान बन्द करनी आरम्भ कर दी।

अब ललना शारदाचरण के पास नहीं जाती थी। स्वयं उसे भी अपने पास आने को नहीं कहती थी। वह उसके प्रति किसी प्रकार का प्रेम-प्रदर्शन भी नहीं किया करती थी। पहले की तरह आजकल गुप्त रूप से पत्र भी वह शारदाचरण के लिए नहीं लिखा करती थी। ललना के इस प्रकार के परिवर्तित मनोभाव के कारण शारदाचरण बड़े संकट में पड़ गया था। पहले तो ललना को बहुत समझाया, उसके इस परिवर्तन के

सम्बन्ध में उसने बहुत ही असन्तोष प्रकट किया और उसकी उदासीनता का अनौचित्य सिद्ध करने के लिए बहुत-सी युक्तियाँ प्रदर्शित की, किन्तु ललना अपने दोनों ही कान बन्द किये रही। अन्त में एक दिन उसने साफ ही कह दिया कि अब मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।

शारदाचरण भी उस दिन नाराज हो उठा। उसने कहा—'अब यदि नही अच्छा लगता तो इतने दिनों तक क्यों अच्छा लगता रहा ?'

'अभी तक बचपन था। अब बड़ी हो गई हूँ।'

'बड़ी हो जाने पर शायद यह न अच्छा लगना चाहिए ?'

'नहीं।'

'लेकिन जरा सोचकर देखो…।'

यह बात खत्म भी न हो पाई कि ललना बोल उठी—'अब समझने-बूझने का मतलब नहीं है। तुम मुझे अब बुरी सलाह मत दो।'

शारदाचरण क्रुद्ध हो उठा। उसने कहा—'तो क्या मैं तुम्हें बुरी राय दिया करता हूँ ?'

'कुपरामर्श नही देते तो क्या करते हो ?'

'देता हूँ ?'

'हाँ देते हो।'

'तो आओ, आज हम तुम अपने सारे सम्बन्ध का अन्त कर दें।'

'अच्छी बात है।'

'इस जीवन में अब तुमसे बातें न करूँगा।'

'न करना।'

यह बातचीत हो जाने के बाद वे दोनों अपनी-अपनी राह चले गये। रास्ते भर शारदचरण गरजते-गरजते गया। इधर ललना ने आँख पोंछते-पोंछते सारा रास्ता तय किया।

यह आज से चार वर्ष पहले की बात थी। चार वर्ष के बाद शारदाचरण आज फिर आकर बैठा था उस टूटे हुए शिवजी के मन्दिर में ललना से मिलने की आशा से। पहले की बातों को वह एक तरह से भूल चुका था। अगर भूल नही चुका था तो भूलता जा रहा था। ललना ने ही अनुरोध करके शारदाचरण को फिर यहाँ बुलाया था। यही कारण था कि

पहले की बातें एक-एक करके फिर उसके मस्तिष्क मे उदित हो चली थी।

शारदाचरण के मन में बहुत सी बातें आने लगीं। वह सोचने लगा— ललना आज चार वर्ष के बाद फिर आवेगी, मेरे पास बैठेगी और मुझसे बातें करेगी। शारदा का अन्तस्तल मानो काँप उठा। आनन्द के कारण मानो उसे थोड़ा-सा रोमाञ्च भी हो आया। उसके मन में आया—अब क्या बात है? क्यों आवेगी वह मेरे पास? ऐसे समय मे यहाँ आने के लिए मुझसे क्यों अनुरोध किया? मेरा उसका क्या सम्बन्ध है?

रात का एक बज रहा था। एक स्त्री घूघट से मुँह ढँके हुए उसी रास्ते से चली आ रही थी। उसकी तरफ निगाह जाते ही शारदाचरण ने सोचा—क्या यह ललना है? ललना ही तो है। परन्तु अब यह बहुत बडी हो गई है।

ललना बैठ गई। आज बहुत दिनों के बाद वे दोनों एक-दूसरे की ओर मुँह करके चन्द्रमा के प्रकाश मे उस शिवजी के भग्न मन्दिर के चबूतरे पर बैठे रहे। देर तक कोई किसी प्रकार की बात मुँह मे नही निकाल सका। बाद को साहस करके शारदाचरण ने कह ही डाला—'मुझे यहाँ किस आशय से बुलवा भेजा है तुमने?'

मुँह ऊपर करके ललना बोली—'मेरा एक काम है।'

'काम क्या है?'

'बतलाती हूँ।'

फिर बड़ी देर तक नि.स्तब्धता रही। तब शारदाचरण ने कहा—'क्यों? कुछ बतलाया तो नहीं तुमने?

ललना ने कहा—'अच्छा, बतलाती हूँ। पहले तुम मुझे प्यार करते थे, क्या अब भी तुम्हारा प्रेम मुझ पर है?'

जिस भाव-भंगिमा मे यह प्रश्न किया गया था, उसके कारण शारदाचरण को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने कहा—'यह बात पूछने का तुम्हारा क्या आशय है?'

'मतलब है।'

'अगर मैं कहूँ—हाँ, प्यार करता हूँ।'

मुस्कराकर लज्जित भाव से ललना बोली—'मेरे साथ विवाह करोगे।'

शारदाचरण जरा-सा पीछे हटकर बैठे। वह बोले—'नहीं।'

'क्यों न करोगे ?'

'तुम्हारे साथ विवाह करने पर मेरी जाति चली जायगी ।'

'मान लो कि जाति चली ही गई, तो क्या होगा ?'

'खाऊँगा क्या ?'

'खाने के लिए तुम्हें चिन्ता न करनी होगी ।'

'परन्तु पिता जी को यह काम पसन्द न होगा ।'

'पसन्द होगा । तुम उनकी एक मात्र सन्तान हो । अगर चाहो तो उन्हे पसन्द करने के विए वाध्य कर सकते हो ।'

कुछ देर के बाद शारदाचरण ने कहा—'तो भी यह सम्भव नहीं है ।'

'क्यों ?'

'इसके बहुत से कारण हैं। मान लो कि पिता जी पर दबाव डालकर मैंने उन्हें इस बात के लिए तैयार कर लिया कि वे तुम्हारे साथ मेरे विवाह की बात किसी तरह मान लें। परन्तु हमारा-तुम्हारा विवाह-होते ही मैं जाति से अलग कर दिया जाऊँगा । जातिच्युत होकर इस हलुदपुर में निवास करना हमारे लिए सुखकर होगा नहीं । इधर मेरे पास इतना धन भी नही है कि तुम्हें लेकर कहीं विदेश में चला जाऊं और आनन्द से वहीं रहूँ । इसके सिवा हमारे-तुम्हारे सम्बन्ध की बात खतम हो चुकी है, वह अब खतम होकर ही रहे। ऐसी ही मेरी भी इच्छा है और यही मगल का भी कारण है।''

कुछ देर तक मौन रहने के बाद ललना ने कहा—'अच्छी बात है ।' ऐसा ही सही। परन्तु क्या तुम मेरा एक उपकार कर सकोगे ?'

'कहो, अगर मेरे करने योग्य होगा तो कर दूँगा ।'

'कार्य वह तुम्हारी शक्ति से परे नही है। परन्तु तुम करोगे या नहीं, यह मैं नही कह सकती ।'

'बतलाओ, अपनी शक्ति के अनुकूल भरसक प्रयत्न करके मैं देखूँगा ।'

'मेरी बहन छलना के साथ तुम विवाह कर लो ।'

जरा-सा हँसकर शारदाचरण ने कहा—'क्यों ? उसके लिए कोई वर नहीं मिल रहा है ?'

'कहाँ मिल रहा है ? हम लोग दरिद्र हैं। कौन इतना उदार व्यक्ति है जो आसानी के साथ दरिद्र के घर मे विवाह करेगा ? केवल यही एक कठिनाई नही है। हम लोग कुलीन हैं, इस कारण कुलीन मे ही विवाह भी करना होगा अन्यथा जाति को तिलांजलि देनी होगी। यदि इस बात पर विचार न करना होता तो सम्भव था कि कोई-न-कोई वर मिल जाता। तुम हमारे अनुकूल घराने के हो, इससे तुम यदि विवाह कर लो तो सभी तरह की कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं। बतलाओ, कर लोगे उसके साथ विवाह ?'

'मैं पूर्णरूप से पिता की आज्ञा के अधीन हूँ। उनकी सम्मति के बिना मैं कुछ नही कह सकता।'

'तो उनकी स्वीकृति लेकर विवाह कर लो।'

'मुझे जहाँ तक मालूम है इस विवाह के लिए वे अपनी स्वीकृति नही देंगे।'

ललना ने दु खी भाव से कहा—'वे देंगे क्यो नही अपनी स्वीकृति ?'

शारदाचरण ने कहा—'तो मैं साफ-साफ बताये देता हूँ। छिपाने से कोई लाभ नही है। मेरे पिता जी कुछ लालची आदमी हैं। उनकी इच्छा मेरा विवाह करके कुछ धन प्राप्त करने की है। तुम्हारे यहाँ कुछ मिलेगा नही, यह निश्चय है। इससे विवाह भी न हो सकेगा।'

बहुत विह्वल होकर ललना बोली—'हम लोग दरिद्र है, कहाँ पावेंगे देने को। इसके सिवा धन का तुम्हें प्रयोजन क्या है, धन तो काफी हैं तुम्हारे पास।'

दुःखित भाव से धीरे से हँसकर शारदाचरण ने कहा—'यह बात तो मैं समझता हूँ परन्तु वे न समझेंगे इसे।'

'अगर तुम समझाकर कहोगे तो वे जरूर ही समझ जायँगे।'

'मैं केवल एक बार उनसे कहूँगा, समझाकर न कह सकूँगा।'

ललना ने अत्यन्त ही दुःखित होकर कहा—'तब कैसे काम बनेगा ?'

'इसके लिए मैं क्या करूँ ?'

'तो शायद तुम्हारी ही इच्छा नही है विवाह करने की।'

'नही।'

'ललना जैसी कन्या तुम्हें आसानी से मिल सकेगी । वह सुन्दर है, बुद्धिमती है, काम-काज मे निपुण है। इस कारण उसके साथ विवाह करके तुम एक उपयुक्त गृहस्थी प्राप्त करने में समर्थ हो सकोगे। साथ ही एक दरिद्र का उपकार हो जाएगा, एक ब्राह्मण की जाति और वंश मर्यादा की रक्षा हो जायगी, मैं भी आजन्म तुम्हारे साथ बिकी-सी रहूँगी। बताओ, क्या तुम यह विवाह कर सकोगे ?'

'पिताजी जो कुछ कहेंगे, वही मैं करूँगा।'

'आज मैं तुमसे सब बातें कहे डालती हूँ। इस जन्म में कदाचित फिर इन्हें कहने का अवसर न पाऊँगी। इससे मैं कह रही हूँ। तुमसे मैंने कभी लज्जा नहीं की। आज भी न करूँगी। सब बातें साफ-साफ कह देती हूँ। तुम्हें मैं सदा से प्यार करती आई हूँ। आज भी प्यार करती हूँ। यह बात पहले एक बार कही थी। बहुत दिनों के बाद आज फिर एक बार और आखिरी बार कह रही हूँ तुम मेरे एकमात्र अनुरोध की रक्षा नहीं कर सके। कदाचित् मेरा यह आखिरी अनुरोध है। जो होना था, हुआ। ऐसा और कभी न होगा। तुम्हे मैंने व्यर्थ इतना कष्ट दिया, इसके लिए तुम मुझे क्षमा कर देना।'

शारदाचरण ने मन-ही-मन क्लेश का अनुभव किया। उसने देखा कि ललना चली जा रही है। इससे उसने कहा—'इस सम्बन्ध में मैं पिता जी से अनुरोध करूँगा।'

उसकी ओर मुँह फेरे बिना ही ललना ने कहा—'करना।'

'किन्तु मैं पिता की आज्ञा के अधीन हूँ।'

ललना चलते-ही-चलते बोली—'यह भी सुन चुकी हूँ।'

'अगर कुछ कर सका तो तुम्हें सूचित करूँगा।'

'अच्छी बात है।'

'ललना, मुझे क्षमा करना।'

'कर दिया मैंने।'

१०

'नक्शा मेरा है—निकालो तो बच्चू चार आने पैसे!' गाड़िडल के

हाथ में लेकर गिनने के बाद श्रीमान् हाराणचन्द्र मुखर्जी ने बहुत ही होशियारी के साथ उन्हें पाकेट में रख लिया।

'आठ आने रखता हूँ, इस बार देखूँ भाग्य में क्या बदा है ?'

हाराणचन्द्र ने अपने सामने, सैंकड़ों जगह पर टूटी हुई चटाई पर ठोंककर आठ आने पैसे रख दिए और ताश उन्होंने हाथ में ले लिया। साथी लोग उत्कण्ठा से अपने-अपने पत्ते देखने लगे। कुछ क्षण के बाद ही दो-तीन हाथ उछालकर हाराणचन्द्र ने कहा—'फिर नक्शा ! इस बार बँधा रुपया निकालो भाई।'

हाराणचन्द्र के हवाले एक रुपया करके गाड़िडल ने उसके सामने ताश फेंक दिया और जितने साथी थे, वे सभी मुँह मुखाये हुए ढूँढ़-ढूँढ़कर अपने-अपने खजाने में पैसे निकालने लगे।

'और चाहिए ? और चाहिए—और चाहिए ?'

'बस करो, अभी नहीं।'

'पन्द्रह पर एक जाओ।'

'गये ! तुम लोग फिर गये—देखो, इस बार फिर मेरा ही नक्शा है।'

रात्रि व्यतीत होते-होते हाराणचन्द्र ने जब स्थान का परित्याग किया तब रुपयों और पैसों की अधिकता के कारण उनकी दोनों ही ओर की जेब काफी भारी थी। उस दिन की सारी रात उन्होंने बाहर ही बाहर बिताई, घर नहीं गये वे। दूसरे दिन भी कभी इस दुकान की ओर कभी उस दुकान की सैर करते-करते दोपहर हो गई। अन्त में चार बजते-बजते जब हाराणचन्द्र ने घर में प्रवेश किया तब आँखें बिलकुल लाल-लाल हो उठीं। मुख, नाक, धोती, अँगोछा आदि से गाँजे की बड़े जोर की दुर्गन्ध निकल रही थी। स्नान करके जब वे भोजन करने के लिए बैठे तब शुभदा भी आकर उनके सामने बैठी और बोली—'आज बहुत देर हो गई।'

'क्या कहूँ भाई, काम-काज के झमेले में देर हो ही जाती है। क्या तुमने अभी तक भोजन नहीं किया ?'

शुभदा चुप रही।

हाराणचन्द्र ने फिर पूछा—'किया नहीं, अभी तक भोजन ?'

'अब करूँगी।'

दुखित हो हाराणचन्द्र ने कहा—'यह सब तुम्हारा बहुत ही अनुचित कार्य है। मेरा कुछ ठीक तो रहता नहीं। अगर मैं सारे दिन न आऊँ तो क्या तुम भूखी ही पड़ी रहोगी ?'

दो-एक ग्रास अन्न मुख में डालने के बाद हाराणचन्द्र ने कहा—'सवेरे तुम मुझसे रुपयों के लिए कह रही थी न ?'

हाराणचन्द्र किस मतलब से ऐसा कह रहे थे, यह बात शुभदा की समझ में नहीं आई। इससे उसने कहा—'नहीं तो, मैंने कब रुपये माँगे थे तुमसे ?'

'नही माँगे थे ? मेरा ख़याल था कि तुम रुपयों के लिये कह रही थी।'

बाद को जरा-हँसकर हाराणचन्द्र ने कहा—'कल नही माँगा था तो न सही, दो दिन बाद तो माँगना ही पड़ेगा। वह एक ही बात हुई। मेरे कपडे के छोर में आठ रुपये बँधे हैं, उनमें से पाँच रुपये तुम ले लो।'

सिर हिलाकर शुभदा बोली—'अच्छा !'

आज शुभदा बहुत विस्मित हुई। बहुत दिनों से ऐसा नही हुआ था। इधर काफी अरसे से हाराणचन्द्र इस प्रकार स्वेच्छा से शुभदा के हाथ पर पैसे रखने नही आये थे। भोजन आदि हो जाने पर शुभदा ने पूछा—'रुपये कहाँ मिले ?'

हाराणचन्द्र के मुँह से हँसी निकल आई। उन्होने कहा—'अजी, रुपयों के लिए हम लोगों को चिन्ता नही करनी पडती। पुरुष जाति के पेट में बुद्धि हो तो उसके लिए पृथ्वी भर में रुपये ही बिखरे पड़े होते हैं। समझती हो न ?'

शुभदा ने क्या समझा, यह वही जानती होगी, लेकिन उसने प्रतिवाद नही किया।

उपर्युक्त घटना के बाद प्राय. दो मास का समय बीत गया।

आज सन्ध्या समय शुभदा ललना के पास बैठकर अत्यन्त ही खिन्न भाव से बोली—'ललना, क्या आज कुछ नही है बेटी ?'

'कुछ नही है माँ।'

'कितने दिन तो तूने यही बात कही थी, बाद को कभी दो आने,

कभी चार आने निकाल कर देती रही है। देख, बेटी, शायद कुछ हो, नहीं तो आज रात में किसी के मुँह में एक बूँद पानी भी न पड़ सकेगा।'

माता का कातर मुख तथा आँसुओं से रुँधा हुआ गद्‌गद् स्वर सुनकर ललना रो पड़ी—'कुछ नहीं है माँ। मैं तुम्हारे पैर छूकर कह रही हूँ, कुछ नहीं है।'

अब माता-पुत्री दोनों रोने लगीं। शुभदा इसलिए रो रही थी कि उसने अकारण कन्या का अविश्वास किया; परन्तु ललना के आँसू बहाने का कारण दूसरा ही था। इससे पहले यह कह देने के बाद भी मेरे पास कुछ नहीं है, वह कुछ-न-कुछ दे ही दिया करती थी, किन्तु आज सचमुच कुछ नहीं दे सकी। सदानन्द जो पचास रुपये दे गया था उसकी अन्तिम कुछ पाई भी आज प्रातःकाल समाप्त हो चुकी थी।

ललना खिन्न भाव से सोच रही थी—'हाय, सब लोग क्या खाकर यह रात्रि व्यतीत करेंगे। किसी को खाने को देने में समर्थ न हो सकने पर माँ के मन की अवस्था कैसी होगी? सवेरा होने पर किसके पास भिक्षा के निमित्त जाना होगा?' यही सब सोचते-सोचते उसके नेत्रों में आँसू आ गये। बिन्दो से कुछ मिल जाया करता था, किन्तु वह वहाँ थी नहीं। सदानन्द उसका सहायक था लेकिन वह भी वहाँ नहीं था। परन्तु चिन्ता का क्या केवल इतना ही कारण था। आज दो दिन से हाराणचन्द्र के भी तो दर्शन नहीं हुए थे। वे या तो अफीम की दूकान पर होंगे या जुए के अड्डे पर।

यहाँ हाराणचन्द्र का भी थोड़ा-सा हाल कहे देता हूँ। वे गाँजे का दम लगाया करते, अफीम खाया करते। चार-छः पैसे वे उधार ले लिया करते और कभी दो आना, कभी चार आना झूठ बोलकर शुभदा से वसूल कर लिया करते। जब इस प्रकार उन्हें पैसे न मिलते और मात्रा के अनुसार अफीम और गाँजा प्राप्त करने का कोई भी साधन न दिखाई पड़ता, तब वे तिलक लगा लेते और सारे शरीर में राख और विभूति लगाकर ब्राह्मण-संतान की अन्तिम वृत्ति—भिक्षा का भी अवलम्बन किया करते थे। परन्तु जुए का रहस्य उन्हें समुचित रूप से ज्ञात नहीं था।

आजकल जुए की ही ओर हाराणचन्द्र का आकर्षण अधिक था।

जैसा कि जुए के खेल मे प्रायः हुआ करता है, अर्थात् प्रारम्भ में दो-चार पैसे मिल जाते है, कभी-कभी दो-चार रुपयों का लाभ हो जाता है, वैसा हाराणचन्द्र के सम्बन्ध मे भी हुआ। प्रारम्भ मे वे कुछ पा जाया करते थे, परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-ही-वैसे उनका भाग्य भी संकुचित होता गया। शुभदा को उस दिन उन्होने पाच रुपये दे दिये थे, वही उनकी अंतिम देन थी। बाद को उन्हें कभी बिल्कुल ही कुछ न मिला हो, यह बात नही थी। कभी-कभी वे कुछ-कुछ पा भी जाया करते थे, किन्तु आय की अपेक्षा व्यय अधिक हुआ करता था।

पहले हाराणचन्द्र हलुदपुर में कहीं निश्चिन्त होकर बैठ नहीं सकते थे। अब ब्राह्मणपाड़ा में भी पैर रखना उनके लिए अत्यन्त ही क्लेशकर हो उठा था। रास्ते में जिस किसी से भी उनकी मुलाकात होती, वही किसी-न-किसी बात के लिए उनसे तकाजा कर बैठता। जितने भी आदमियों से हाराणचन्द्र का परिचय था, उन सभी से उन्होंने कुछ-न-कुछ उधार लिया था और इसी वादे पर लिया था कि कल दे दूंगा। किसी से दो पैसे लिये थे, किसी से चार पैसे लिये थे, किसी से दो आने तो किसी से चार आने—बचने कोई नही पाया था। चार आना से आठ आना हर एक दुकानदार का भी उनके ऊपर चढा हुआ था। इन सब कारणों से ब्राह्मणपाडा में आजकल हाराणचन्द्र बहुत कम दिखाई पडा करते थे। परन्तु सन्ध्या के समय जब कभी अफीम की दुकान पर उनकी खोज की जाती तब वे अवश्य एक किनारे पर बैठे हुए पाये जाते थे। अधिक रात्रि व्यतीत हो जाने पर किसी-किसी दिन बेड़ा खोलकर जुए के अड्डे में भी प्रवेश करते हुए दिखाई पड़ा करते थे। आजकल अधिकतर उनकी रात्रि यही व्यतीत हुआ करती थी।

हाराणचन्द्र के पास पैसों की कमी हुआ करती थी। इससे वे जुए के अड्डे पर जाकर भी स्वयं बाजी नही लगा पाते थे। परन्तु किसी दूसरे की बाजी में योगदान करके भी बीच-बीच मे दो चार पैसे कमा लिया करते थे। खेल जम जाने पर लोगों की बहुधा उठने की इच्छा नहीं हुआ करती थी। वैसे समय मे हाराणचन्द्र तम्बाकू चढा-चढ़ा कर लोगों को दिया करते थे। अवसर देखकर विजेता के पक्ष में वे दो बातें कह दिया करते थे।

कभी वे हँसी-मजाक से लोगों का मनोरंजन करने लगते और कभी हाथ मे जनेऊ लपेटकर श्री दुर्गाजी का जप करने लगते। इस प्रकार दाव जीतने वालों का मन प्रसन्न कर वे अफीम-गांजा का हिसाब बांध लिया करते थे। जिस दिन कुछ अधिक पैसे हाथ मे आ जाते उस दिन दो हाथ वे भी खेल लिया करते थे। कभी-कभी खेल मे कुछ जीत भी लिया करते थे। अगर हार जाते तो समझ लेते कि मानो गुड़ का लाभ चीटियों ने खा लिया। हाथ मे दो-चार आने पैसे आ जाने पर किसके लिए सम्भव था कि वह उन्हें पा जाता।

अफीम की दूकान पर पहुँचकर हाराणचन्द्र अपने पुराने ढंग के अनुसार मुसाहिब का आसन ग्रहण कर लिया करते थे। बहुतों को राजा-दीवान आदि ऊँचे-ऊँचे पदों पर अभिषिक्त करने के बाद शुभदा की मुखाकृति का स्मरण करते-करते वे आकर घर मे विराजमान हुआ करते थे। यहाँ अन्न का अभाव उनके लिए होता नही था। मानो उन्होने यह समझ रक्खा था कि शुभदा की जमीदारी कभी छूटने की नही है, मेरी शुभदा मूर्तिमती अन्नपूर्णा है। उसका हाथ कभी खाली रह ही नहीं सकता। बात भी प्रायः ठीक ही थी। और किसी को मिलता या न मिलता, किन्तु उन्हें तो मुट्ठी भर अन्न मिल ही जाया करता था। परन्तु आजकल घर आने मे उन्हे जरा कुछ कठिनाई का अनुभव हुआ करता था, कदाचित् कुछ लज्जा-सी मालूम पड़ा करती थी। जब वे घर के समीप आ जाते तब तो मानो पैर उनके उठना ही नही चाहते थे। अन्त में घर मे प्रवेश करने के बाद तो उन्हें और भी अधिक दुखी हो उठना पड़ता था। शुभदा जिस प्रकार पैर धोने के लिये जल लाकर उनके सामने रख देती, जिस प्रकार वह आकर उनके पैर पोंछ देती, जिस प्रकार थाली परोसकर वह उनके सामने रख देती और स्वयं मुँह सुखाये हुए नितांत ही अवसन्न होकर मौन भाव से सामने बैठी रहती, उसके कारण हाराणचन्द्र का हृदय मे न जाने कैसा हो उठा करता था। स्त्री की विषादमयी मूर्ति देखकर अन्न का ग्रास मुँह मे डाल दिये जाने पर भी आसानी से पेट मे जाना नही चाहता।

हाराणचन्द्र दिन में चाहे पाँच बजे आते, चाहे रात में तीन बजे आते, वे शुभदा को चौके में थाली लगाकर बैठी हुई पाया करते थे। वह

स्वयं आहार और विश्राम न करके उनका भोजन लिए हुए बैठी रहती। एक बार भी वह मुँह से यह बात नहीं निकालती थी कि इतनी देर तुमने क्यों कर दी, एक बार भी वह नहीं पूछती थी कि इतनी रात तुमने कहाँ बिता दी? सुभद्रा का खिन्नतापूर्ण मौन मुख ही हाराणचन्द्र को अधिक व्यग्र कर दिया करता था। वह यह अनुभव किये बिना नहीं रह पाता था कि स्वामी होकर भी मैं इतनी श्रद्धा, इतनी भक्ति प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हूँ। उसकी इतनी सेवा, इतने सम्मान का चुपचाप उपभोग करते रहना मेरे लिए उचित नहीं है। हाराणचन्द्र यह भी अनुभव करते थे कि एक आदमी बराबर अपराध करता जा रहा है और दूसरा आदमी उसे सभी अपराधों के लिए क्षमा करता जा रहा है। इस कारण अफीमची और गँजेड़ी होने पर भी उनके नेत्रों में लज्जा आ ही जाया करती थी। वे मन-ही-मन सोचा करते कि सुभद्रा एक बार भी तिरस्कार का भाव नहीं प्रकट करती, कभी वह इस प्रकार की भाव-भंगी भी नहीं करती कि तुम ऐसा मत करो, तुम्हारा इस प्रकार का आचरण अब मेरे लिए सह्य नहीं हो रहा है।

हाराणचन्द्र जो इस प्रकार मन-ही-मन खिन्न और लज्जित हुआ करते थे, उसका कदाचित् एकमात्र यही कारण था कि आजकल प्रतिदिन ही अपनी करतूत पर स्वयं उन्हें विचार करना पड़ता था। सुभद्रा के प्रति प्रतिदिन इतना अधिक अन्याय करते-करते बीच-बीच में संकोच का भी अनुभव करने लगते। जो भी हो, इसी प्रकार दिन बीतते जा रहे थे।

सदा की भाँति आज भी हाराणचन्द्र बहुत अधिक रात बीत जाने के बाद आकर घर पहुँचे। घर के भीतर पैर रखने पर आज उन्हें सदा के नियम में कुछ बाधा मालूम पड़ी। आज सुभद्रा पैर धोने के लिए पानी लेकर नहीं आई। निर्दिष्ट स्थान पर थाली लगाए हुए कोई उनकी राह देखती हुई भी नहीं बैठी थी। एक दीपक जलता हुआ टिमटिमा रहा था। हाराणचन्द्र बत्ती बढ़ाकर उसे तेज करने के लिए जब गये तब उन्होंने देखा कि उसमें तेल ही नहीं है। इससे उन्हें भय हुआ। इधर दो दिन से घर आये नहीं थे। उन्हें आशंका हुई कि शायद इस बीच में कोई घटना हो गई है। शय्या के एक किनारे बैठकर हाराणचन्द्र अपने

कैसे अवसर पर कसी बात मुँह से निकालना चाहिए, यह उसने कभी सीखा नहीं था। ललना अभी तक आड़ में खडी-खडी ये सब बातें सुन रही थी। पिता के चले जाने पर वह धीरे-धीरे छलना के सामने आकर बोली—'छलना, क्या तुम्हे जरा भी बुद्धि नहीं है ?'

'क्यों ?'

'किसे क्या कहना चाहिए, यह अभी तक सीखा नही तुमने। क्या बाबूजी को इसी तरह की कड़ी-कडी बातें कहकर खदेड देना उचित है ?'

कुपित होकर छलना बोली—'मैंने उन्हें नही खदेड़ा। वे स्वयं भाग गये हैं।'

छि: ! कोई पिता को ऐसी बात कहता है ?'

'कहता क्यों नहीं ? अगर पिता जैसा पिता हो उसे तो कुछ न कहना चाहिए। परन्तु बाप की चाल इस तरह की हो तो उसे सभी कुछ कहा जा सकता है। और किसका बाप इस तरह जी छुडाकर भाग निकलता है ? किसका बाप इस तरह अफीम और गाँजे के नशे में चूर होकर बाहर पडा रहता है ? मैं खूब कहूँगी, अभी और न जाने क्या-क्या कहूँगी ?'

नाराज होकर ललना बोली—'छलना, तू यहाँ से हट जा !'

'क्यों हट जाऊँ ? तू ही क्यों नही हट जाती ? तू मेरे ऊपर मालकिन का-सा अधिकार जमाने की कोशिश न किया कर।'

ललना मुँह बद किये हुए उस स्थान से हार मानकर चली गई।

११

उस दिन दोपहर का समय बीत जाने के बाद राममणि के सामने काँसे का एक लोटा रखकर शुमदा ने कहा—'दीदी, देर बहुत हो गई है। अब शायद वे न आवेंगे। यह लोटा गिरवी रखने से शायद कुछ मिल जाय !' शुमदा के मुख की तरफ कुछ देर तक ताकने के बाद रासमणि ने कहा—'बड़ी लज्जा लगती है बहू।'

ललना वही खडी थी। लोटा हाथ में लेकर वह बोली—'माँ, मैं एक बार देख आती हूँ।'

घुमदा ने रुद्ध कण्ठ से कहा—'कहाँ ?'

ललना धीरे से हँसकर एक बार बुआ की तरफ देखकर बोली—'वही, घोप बाबू की दूकान पर।'

'क्यों, इसमे शर्म की कौन-सी बात है ? मैं यहाँ की लड़की हूँ। छुटपन से ही सब लोग मुझे देखते आये हैं। मेरे लिए लज्जा करने की कौन-सी बात है ? सुख और दु:ख के दिन किसके घर मे नही आते माँ ?'

ललना को जाते देखकर रासमणि ने उसके हाथ से लोटा छीन लिया और बोली—'तब मैं ही जाती हूँ।'

उस दिन तीन बजे के बाद सब लोगो का भोजन हुआ। सबके तृप्त हो जाने पर घुमदा ललना का हाथ पकड़कर उसे एक तरफ ले गई और उससे बोली—'चुपके से थोड़ा-सा मजने का शाक तो तोड़ ले आ बेटी।'

विस्मित होकर ललना बोली—'इस समय शाक क्या करोगी माँ ?'

'काम है बेटी।'

'क्या काम है माँ ?'

थोडा हँसकर घुमदा बाली—'तू क्या करेगी उसे जानकर ?'

यह बात घुमदा ने जिस भाव-भंगिमा मे कही थी, उससे ललना बहुत कुछ ताड़ गई कि इनका मतलब क्या है। उसने कहा—'बटलोई मे शायद भात नही है।'

'भात है क्यों नही ?'

'तब शाक क्या करोगी ?

'गृहस्थ का घर है। जरा-सा बनाकर रख लिया जायगा तो क्या इसमें कोई हानि होगी ?'

बहुत ही कातर भाव से ललना बोली—'सच-सच क्यों नही बतलाती हो माँ ! क्या बात है ?'

'बात क्या है ?'

'तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझसे छिपाओ न माँ।'

ललना माँ के पैरों मे हाथ लगाने ही जा रही थी कि माँ ने उसे पकड़ लिया, और भी जरा-सा समीप हो उसके सिर पर के बालो को कानों के पास समेटते-समेटते वह प्रसन्न मुख से बोली—'एक आदमी के ही खाने

भर को भात है। इससे अधिक नहीं है। शायद वे आ जायँ, इसलिए…'

'इसीलिए तुम सजने के पत्ते चबाकर रह जाओगी ?'

पहले की ही तरह जरा-सा हँसकर शुभदा बोली—'तो क्या सजने के पत्ते खाने योग्य नही हैं ?'

'अखाद्य तो नही हैं, किन्तु क्या केवल उन्हे ही खाकर रहा जाता है ?'

'तो इससे क्या हुआ ? अभी तू ही तो कह रही थी ललना कि सुख और दुःख की घडियाँ किसके यहाँ नहीं आया करती ? इसीलिए दुःख की घडिया आने पर सुख के समय की बातों को भूल जाना चाहिए। जब इस ओर फिर भगवान की दया होगी तब सब कुछ होगा उस समय…।'

यह बात कहते-कहते शुभदा की आँखो में भी आँसू आ गये।

रोते-रोते ललना चली गई। जरा देर के बाद ही लौटकर सजने के थोड़े से पत्ते माँ के पैरों के पास रखकर आँखें पोंछती-पोंछती वह चली गई।

सध्या होने में अब भी देर थी। एक भिखारी बड़ी देर से ब्राह्मण-पाड़ा की मोदी की एक दूकान पर एक बगल खडा था। वह दूकान बहुत ही छोटी थी। पैसे दो पैसे की चीजें लेने वाले लोग वहाँ आया करते थे। वहाँ कोई ऐसा ग्राहक नहीं आता था, जिसे कुछ अधिक सौदा लेना हो परन्तु ग्राहकों की वहाँ कमी नही रहती थी।

कोई आकर एक पैसे का तेल खरीदता, कोई दो पैसे की दाल खरीदता, कोई एक छदाम का नमक खरीदता। इस तरह सामान लेकर लोग अपनी अपनी राह चले जाया करते। भिखारी चुपचाप खडा था। बहुत देर तक खडे रहने के बाद भी जब वह कुछ नही बोला, खडे-खडे दूकानदारी ही देखता रहा, तब मोदी की दृष्टि उस पर पडी। भिखारी की तरफ देखकर उसने कहा—'तुम क्या लोगे जी ?'

सिर हिलाकर भिखारी ने कहा—'कुछ नही।'

नाराज होकर दूकानदार ने कहा—'तब बेकार यहाँ खड़े होकर भीड़ मत लगाओ !'

उसी समय एक ग्राहक बोल उठा—'शायद भिक्षा के लिए खड़ा है।'

यह सुनकर दूकानदार और गुस्सा हुआ। वह कटु स्वर में बोल उठा—'जाओ, जाओ, यहाँ कुछ न मिलेगा। दिया-बत्ती का समय है और तुम आये हो भीख माँगने के लिए।'

भिखारी वहाँ से चल दिया। जरा देर के बाद ही वह फिर लौट आया और पहले के ही स्थान पर खड़ा हो गया। उसकी ओर घूमते हुए मोदी ने कहा—'फिर आ गये तुम?'

'चावल खरीदोगे?'

'कैसा चावल है? किस भाव से दोगे?'

'मोटा चावल है।'

'कहाँ है? दिखाओ तो जरा।'

एक छोटी-सी पोटली निकालकर भिखारी ने कहा—'यह देखो!'

चीज देखकर दूकानदार ने नाक सिकोड़ ली। उसने कहा—'यह तो भिक्षा मे मिला हुआ चावल है। कितने पैसे लोगे?'

चावल बेचने वाले ने दूकानदार के मुँह की ओर देखकर कहा—'दो आने।'

'धत्! चार पैसे का तो चावल नही है, माँगता है दो आने। मुझे नही चाहिए तेरा चावल।'

सम्भवत: उस आदमी का परिचय देना आवश्यक न होगा। वे हाराणचन्द्र थे।

हाराणचन्द्र पास के ही एक पेड के नीचे बैठकर मोदी के बाप तक की खबर लेते हुए पोटली खोलकर मुट्ठी-मुट्ठी चावल चबाने लगे। मन-ही-मन उन्होंने सोचा—'इतना चावल भला चार पैसे मे दिया जाता है। सारे दिन की मेहनत का मूल्य क्या चार पैसा है? यही चावल ले जाकर अगर अड्डे वाले को दे देता तो चार दिन के नशे की व्यवस्था हो जाती। परन्तु वहाँ क्या इसे ले जाते बनता है? छि:! वे साले पहचान लेंगे कि यह भिक्षा का चावल है। छि:! छि:! छि:! तो क्या इसे घर ले जाऊँ? परन्तु यह जरा-सा चावल किसके-किसके मुँह में डालने को होगा? कुछ काम नही है इसे घर ले जाने का।'

हाराणचन्द्र ने चावलो की पोटली बाँध ली और दूकानदार के पास

पहुँचकर बोले—'चावल ले लो।'

'चार पैसे मे दोगे न ?'

'हाँ।'

'तो इसी डलिया में खोल दो।'

एक डलिया में चावल खोलकर हाराणचन्द्र ने हाथ फैलाया। दूकानदार से चार पैसे लेकर कुछ दूर जाने के बाद हाराणचन्द्र ने एक बार खूब जी भरकर हँस लिया। उसने मन-ही-मन कहा—'कैसा चकमा दिया है मैंने बच्चू को ! जैसा कर्म है उस हरामजादे का वैसा ही फल भी दिया है मैंने। आधा चावल तो चबा डाला है, लेकिन बेटा जान नही पाये।' लेकिन हाराणचन्द्र के मन मे यह बात एक बार भी नहीं आई कि दूकानदार ने यह जानने के लिए जरा भी इच्छा नही की। हृदय की प्रसन्नता के कारण हँसते-हँसते वे अफीम की दूकान का बेडा खोलकर उसमें घुसे।

उनके वहाँ के व्यवहार का निरीक्षण करना आवश्यक नही है, अब हम दूसरी तरफ चलते है।

१२

'बिटिया, अब तो नही रहा जाता।' तीन दिन तक उपवास करने के बाद शुभदा पुत्री ललना की गर्दन पकड़कर रुद्ध आवेग से रो पडी।

बहुत ही स्नेहपूर्वक माता के अश्रुबिन्दु पोंछकर ललना बोली—'अधीर क्यों होती हो माँ। ये दिन सदा तो बने नही रहेगे, फिर अच्छे दिन आवेंगे।'

रोते-रोते शुभदा ने कहा—'भगवान् करे तुम्हारी बात ठीक निकले बेटी, लेकिन अब तो सहा नहीं जाता ! आँखो के सामने तुम लोगों की इतनी दुर्दशा माँ होकर मुझसे नही देखी जाती। अब तो बिटिया, मेरे मन में यही बात आती है कि मैं गगा माता की गोद में स्थान ग्रहण करूँ और तू जिस तरह भी सम्भव हो, इन सब की रक्षा करना। द्वार-द्वार पर भिक्षा माँगना। ओह ! माँ होकर मुझसे तो अब नही देखा जाता।

शुभदा जिस प्रकार फफक-फफक कर रो उठी थी, जिस प्रकार कातर

भाव से उसने बेटी का गला पकड़ रक्खा था, उसे देखकर पत्थर भी पिघल जाता। आज कितने दिनों के बाद वह अपना धैर्य खो बैठी। कितने दुख-क्लेश उसने सहन किये थे, लेकिन आज वह बहुत अधीर हो उठी थी। यही कारण था कि आज उसे सँभालना असम्भव हो रहा था। जो कभी क्रुद्ध नहीं होता उसे जब क्रोध आता है तब इतने जोर का आता है कि वह सँभाले नहीं सँभालता। जो बहुत ही शान्त है, उसके हृदय में जब तूफान आता है तब वह प्रलय हो उठता है। यही हालत शुभदा की भी हुई थी। इस कारण ललना बड़े सकट में पड़ गई थी। वह माता को किसी प्रकार भी नहीं समझा पाती थी कि इस प्रकार धैर्य छोडने, रोने-धोने से विपत्ति कम न हो सकेगी, हृदय फटकर गिर पडे तो फिर उसे सँभाल कर रखना सम्भव न होगा।

गम्भीर रात में माँ-बेटी वहीं लेटी-लेटी सो गईं।

शुभदा को स्वामी के लिए बड़ा भय हो रहा था। आज छ दिन हुए, वे घर नहीं आये थे। उसे ऐसा लग रहा था, मानो अपमान और लाँछना के भय से उन्होंने आत्महत्या कर ली है। बेटी होकर भी छलना ने उस दिन उन्हें निकम्मा कहकर अपमानित किया था। उसने जिस तरह की फटकार उन्हें बतलाई थी उसके कारण आत्महत्या कर लेना उनके लिए आश्चर्य की बात न होगी। यही बात आठों पहर शुभदा के मन मे आ रही थी। आज भी रात्रि व्यतीत होते-होते वह चौंककर उठ बैठी। ललना को जगाकर उसने कहा—'रे, वे अब नहीं हैं।' ललना उस समय भी अर्द्धनिद्रा में ही थी, इससे वह बात नहीं समझ पाई और माँ के मुँह की ओर ताकती हुई बोली—'कौन माँ ?'

'मैं स्वप्न देख रही थी, मानो वे नहीं हैं।'

'इस प्रकार की बात मुँह से क्यों निकाल रही हो माँ ?'

यह बात समाप्त करके ललना रो पडी। इसके बाद शेष रात उन दोनों ने रोते-ही-रोते बिताई।

धीरे-धीरे दिन चढने लगा। लगभग दस बजे स्नान से निबट कर घर की ओर जाते समय कृष्णादेवी मुकर्जी परिवार का हाल लेने के लिए घूम पड़ीं। घर में जाकर आँगन से उन्होंने आवाज लगाई—'बहू !'

बाहर आकर शुभदा ने कहा—'क्या है दीदी ? बैठो।'

'बैठूंगी नहीं बहू, देर हो गई है। स्नान करके लौटते समय एकाएक इच्छा हो आई कि जरा बहू को देखती चलूं।'

शुभदा चुप ही रही।

कण्ठ का स्वर धीमा करके कृष्णादेवी ने कहा—'बहू, जरा सुनो तो।'

शुभदा जब पास आ गई तब उन्होंने कहा—'हाराण का कोई समाचार मिला है तुम्हें ?'

'नहीं।'

'आज कितने दिन हुए उन्हें घर से निकले ?'

'छः दिन हो गये।'

'छ. दिन हो गये ! किसी को ब्राह्मणपाडा में नही भेजा।'

'भेजूं किसे ? कौन है जाने वाला ?'

'यह तो ठीक है। लेकिन तुमने मुझसे क्यों नहीं कहा ?'

शुभदा ने जवाब नही दिया।

जल की कलसी नीचे की तरफ खिसकी आ रही थी, उसे जरा-सा उठाकर कृष्णप्रिया ने कहा—'क्या हाथ में कुछ रुपया-पैसा है ?'

'कुछ नही।'

'तब गृहस्थी का खर्च किस तरह चल रहा है ?'

'यों ही किसी तरह।'

'अभी ललना को जरा मेरे यहाँ भेज देना !'

जब वे चली गईं, तब ललना को बुलाकर शुभदा ने कहा—'तुम्हे कृष्णा दीदी बुला गई हैं, तनिक हो आओ।'

'क्यों ?'

'यह तो मैं नही जानती।'

ललना कृष्णप्रिया की ओर चली। कुछ देर के बाद लौटकर उसने माँ के हाथ पर दो रुपये रख दिये और बोली—'ये रुपये बुआ जी ने दिये हैं।'

अञ्चल के छोर में रुपये बाँधकर शुभदा ने पूछा—'क्या उन्होने कुछ कहा भी है ?'

'उन्होंने कहा है कि तुम्हारे बाबू जी जब आवें तब मुझे सूचित करना।'

उस दिन शुभदा ने भगवान् से बहुत ही प्रार्थना की। पूजा की दालान में काली जी का जो पाठ रक्खा हुआ था, उसके सामने वह हाथ जोड़े हुए बहुत देर तक बैठी रही। तुलसी के चबूतरे पर भी वह बड़ी देर तक मस्तक रगड़ती रही। बाद को कुछ थोड़ी वस्तु मँगाकर वह गंगा स्नान कर लौट आई।

उस दिन ठीक समय पर अपनी रुचि के अनुकूल भोजन पाकर छलनामयी बहुत ही प्रसन्न हो उठी। हँसती-हँसती अपनी गुड़िया का विवाह पक्का करने के लिए दूसरे मुहल्ले में ललिता के घर की तरफ चली।

रात में जब थोड़ा-सा अँधेरा हो गया तब उस अँधेरे मे अपना मुँह छिपाये हुए आज हाराणचन्द्र ने घर में प्रवेश किया। छः दिन पहले वे जैसे थे, वैसे ही आज भी थे। परिवर्तन हुआ था केवल उनके वस्त्र मे। वर्ण उसका कोयले से भी अधिक काला हो गया था और गिनने पर सम्भवतः उसमे सौ से भी अधिक स्थानों पर ग्रन्थियाँ बँधी हुई मिलतीं। समय पर उन्हें ठिकाने से भोजन आदि कराकर शुभदा ने ललना को बुलाया और मुस्कराकर कहा—'यदि मैं नित्य ही तुम्हारा मुँह देखकर उठा करूँ तो बहुत अच्छा हो बिटिया।'

ललना भी मुस्कराने लगी। वह बोली—'क्यों? क्या बात है माँ?'

दूसरे दिन सबेरा होते ही ललना अपनी कृष्णा बुआ के यहाँ पहुँची और बोली—'कल रात में बाबू जी आ गये।'

कृष्णा का मुख प्रफुल्लित हो उठा। मानो उनके हृदय की एक बहुत बड़ी दुर्भावना दूर हो गई। मुस्कराती हुई वे बोलीं—'आ गये? अच्छी तरह से है न?'

'हाँ।'

'इतने दिनों तक थे कहाँ?'

'यह मैं नही जानती।'

'बहू ने नही पूछा?'

'नही।'

'तेरी बुआ ने भी कुछ नहीं पूछा ?'

'जी नही। बुआ जी तो बाबू जी से बोलती ही नहीं।'

'बोलती क्यों नही ?'

'मैं नहीं जानती। इसका कारण तो बुआ जी स्वयं ही जानती होंगी।'

ग्यारह बजते-बजते केले के पत्ते से ढककर हाथ में एक पथरी लिये हुए कृष्णप्रिया शुभदा के पास पहुँचीं। उन्होंने कहा—'बहू जरा-सी तरकारी ले आई हूँ, हाराण को दे दो।'

शुभदा ने हाथ से पथरी ले ली और बगल ही के एक कमरे की तरफ इशारा करती हुई बोली—'वे इसी कमरे में हैं।'

शुभदा का तात्पर्य समझकर कृष्णप्रिया ने कहा—'होंगे। इस समय मैं उनके पास जाऊँगी नहीं। घर मे सारा सामान खुला पड़ा है।'

कृष्णप्रिया लौटी जा रही थी। किन्तु द्वार से बाहर पैर रखने से पहले ही वे फिर लौट आईं और शुभदा से बोली—'बहू, क्या तुम हाराण से एक बात पूछ सकोगी ?'

'कौन-सी बात ?'

'यही कि वे इतने दिनों तक कहाँ थे ?'

सिर हिलाकर शुभदा ने कहा—'अच्छी बात है!'

हाराणचन्द्र जब बैठे भोजन कर रहे थे, तब शुभदा ने धीरे-धीरे उससे पूछा—'इतने दिनों तक तुम थे कहाँ ?'

हाराणचन्द्र का मलिन मुख और भी मलिन हो गया। धरती की तरफ देखते हुए उन्होंने धीरे से कहा—'पेड़ के नीचे।'

अब शुभदा कोई और बात न पूछ सकी।

दूसरे दिन दोपहर को कृष्णप्रिया फिर आईं। बहुत तरह की बातें करने के बाद उन्होने कहा—'क्यों बहू, क्या वह बात पूछी थी तुमने ?'

'हाँ।'

'क्या कहा उन्होने ?'

'उन्होंने कहा कि पेड़ के नीचे पड़ा था।'

अब दूसरी बातें उठीं। चलते समय कृष्णप्रिया ने कपड़े के नीचे से

दो थान निकाल कर कहा—'ये घर में पड़े हुए थे, इस कारण ले आई हूँ। हाराण को दे देना, पहन डालेंगे इन्हें।'

शुमदा ने हाथ फैलाकर वे थान ले लिए।

कुछ क्षण तक शुमदा के मुँह की तरफ देखने के बाद कृष्णप्रिया ने कुछ मन्द स्वर में कहा—'देखो बहू, हाराण जब पूछें कि किसने दिया है तब और किसी का नाम बतला देना, मेरा नाम मत बतलाना।'

तनिक हँसकर शुमदा ने कहा—'क्यों?'

थोड़ा-सा इधर-उधर करके कृष्णप्रिया ने कहा—'यों ही।'

'और यदि बतला ही दूँ?'

इस बार कृष्णप्रिया हँसकर बोली—'तो तुम्हें तुम्हारी कृष्णा दीदी के सिर की सौगन्ध है।'

फिर दिन पर दिन बीतने लगे। हाराणचन्द्र इस बार जब से घर आये, बाहर नहीं निकले। इससे उनकी तरफ से शुमदा का भय दूर हो गया था, उनकी दुर्भावना का अन्त हो गया था, परन्तु गृहस्थी का खर्च यही असली कारण था। किसी दिन एक आदमी ने एक रुपया दान कर दिया, किसी दिन एक आदमी ने दो रुपया भिक्षा के रूप में दिये, इससे तो एक परिवार का पालन होता नहीं। परन्तु शुमदा की चिन्ता का केवल इतना ही कारण तो था नहीं। माधव के मुख की ओर देखते ही उसके शरीर का आधा खून पानी हो जाया करता था। ऊपर से छलना भी उसकी चिन्ता का कारण थी। वह दिनोंदिन बढ़ती ही जा रही थी। विवाह के योग्य हो गई थी। दो-चार मास और व्यतीत हो जाने पर समय का अति-क्रमण हो जाने की सम्भावना थी। उसकी ओर दृष्टिपात करने पर शुमदा को उद्धार का कोई साधन दृष्टिगोचर नहीं होता था। माधव के कारण उसे जितनी चिन्ता थी, उससे कहीं अधिक चिन्ता थी छलना के कारण। माधव का मुख देखने पर जब शुमदा के शरीर का खून पानी हो जाता था छलना का मुख देखने पर उसके शरीर में अस्थि-पिञ्जर तक तरल हो उठने का उपक्रम करते। लगातार इन सब दुश्चिन्ताओं के कारण शुमदा का शरीर जो प्रतिदिन सूखता जा रहा था, उसकी ओर चाहे और किसी का भी ध्यान न गया हो, किन्तु ललना की दृष्टि से वह छिपा नहीं रह

सकता था।

ललना देखा करती कि आजकल माँ गंगा जी के तट से एक घडा जल लाते-लाते हाँफने लगती है, तरकारी बनाते समय आलू और परवल के छिलके छुड़ाने में अब उनके हाथ रुक जाते हैं। गाँव की कोई भी स्त्री सुपारी काटने में शुभदा की बराबरी नही कर सकती थी। परन्तु आजकल उसका सरौता बराबर नही चलता था। सुपारी का कोई टुकड़ा मोटा हो जाता, कोई पतला। भोजन भी अब वह दो बार के स्थान में एक ही बार, दिन को चार बजे किया करती थी। आग्रह करने पर वह कहती कि आजकल मुझे भूख नही लगती। माता की इस अवस्था के कारण ललना प्रायः एकान्त में बैठकर आँखें पोंछा करती थी। किसी-किसी दिन तो वह कमरे का दरवाजा बन्द करके खूब रोती थी। इससे अगर कुछ फल होना सम्भव होता तो वह हो सकता था लेकिन इस संसार मे वह होता नही।

१३

आज एकादशी थी। रसोई घर में जाकर ललना ने देखा कि माँ खाना बना रही है।

उस दिन का सारा काम-काज समाप्त होने पर ललना माधव के पास जाकर बैठी।

माधव ने कहा—'उसके सम्बन्ध मे क्या हुआ दीदी?'

'किसके सम्बन्ध में माधव?'

जरा-सा रुककर माधव बोला—'वहाँ जाने के सम्बन्ध में।'

ललना भी कुछ देर तक चुप रही। बाद को जरा-सा सोचकर वह बोली—'वही बात तो आज तुम्हें बतलाने आई हूँ माधव।'

आन्तरिक आग्रह के कारण माधव उठ बैठा। उसने कहा—'क्यों दीदी, कब तक जाना होगा वहाँ?'

'मैं कल जाऊँगी।'

'तुम कल जाओगी। और मैं?'

'पहले मैं जाती हूँ, बाद को तुम भी आ जाना।'

कुछ उतावला-सा होकर माधव बोला—'क्यों ! यदि हम तुम साथ ही साथ चलें तो क्या कोई हानि होगी ?'

ललना ने कहा—'उस अवस्था में माँ बहुत रोवेंगी।'

दुःखी भाव से माधव ने कहा—'रोती रहें !'

'छिः ! क्या यह अच्छी बात है ? अभी मुझे जाने दो।'

'तो फिर कब आओगी ?'

'जिस दिन तुम्हें जाना होगा उसी दिन मैं एक बार फिर आऊँगी।'

'बीच मे नही आओगी ? तो मैं कब आऊँगा ?'

'जिस दिन मैं तुमको लेने आऊँगी।'

'आओगी ?'

'हाँ।'

'क्या तुम्हारे जाने पर माँ रोवेंगी नही ?'

'मालूम तो पड़ता है अवश्य रोवेंगी।'

माधव जरा देर तक निरुत्तर रहा। बाद को वह बोला—'दीदी, तो जाने का कोई काम नही है।'

'क्यों भाई ?'

'मन मे जब यह बात आती है कि माँ रोवेंगी, तब वहाँ जाने की मेरी इच्छा नही होती।'

'तो क्या तू न जाएगा ?'

माधव कुछ देर तक फिर चुप रहा। बाद को वह बोला—'नहीं, जाऊँगा।'

'तो कल मैं जाऊँ ?'

'चली जाओ।'

'मुझे जब न देख पावेगा तब तू रोवेगा तो नही ?'

'लेकिन मुझे बुलाने के लिए तुम कब आओगी ?'

'कुछ दिनों के बाद।'

'तब जाओ, मैं न रोऊँगा।'

माधव की आँख बचाकर ललना ने दो बूँद आँसू पोछ डाले। स्नेह-

पूर्वक उसके सिर पर हाथ रखकर उसने कहा—'मेरे जाने पर यह सब बातें तुम माँ से मत कहना।'

'न कहूँगा।'

'माँ जब जो कुछ करने को कहें वही करना। कोई ऐसा काम न करना, जिससे उनके मन को दुःख हो। ठीक समय पर दवा खा लिया करना।'

'खा लिया करूँगा।'

कुछ देर तक रुककर ललना ने फिर कहा—'माधव, क्या सदा भाई की याद तुम्हें आती है?'

'आती है।'

'वे अगर आवें, अगर तुम्हें देखने के लिए आवें···!'

'तो।'

'तो उनसे कहना कि दीदी चली गई। जिस समय कोई यहाँ न रहे, उस वक्त एकान्त में कहना।'

'अच्छा!'

इतने मे शुभदा ने आकर कहा—'बड़ी रात हो गई है बेटी, अब जाकर तुम सोती क्यों नहीं हो?'

उस बात के उत्तर में माधव ने कहा—'माँ, दीदी आज मेरे पास सोवेंगी।'

दीदी को छोड़ने की उस समय माधव को किसी प्रकार भी इच्छा नही हो रही थी। यह बात सम्भवतः शुभदा समझ गई। इससे उसने कहा—'अच्छी बात है, यहीं सोवे। मैं जाकर ऊपर छलना के पास सो जाती हूँ?'

शुभदा के चले जाने पर भाई-बहन में फिर काफी समय तक बातें होती रही। अन्त मे माधवचन्द्र सो गया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ललना को कोई भी न देख पाया। सूर्योदय के पूर्व ही वह घर के जो-जो कार्य कर लिया करती थी वे अब तक पड़े थे। आठ-नौ बज जाने पर भी जब उसका पता न चला तब शुभदा ने माधव से पूछा—'तेरी दीदी कहाँ गई?' छलना से भी उसने पूछा—'तेरी दीदी कहाँ गई?' सभी ने कहा—'मालूम नहीं।'

अधिक देर होते देखकर शुभदा कुछ काम स्वयं करने लगी। छलना ने भी उस दिन उसे बड़ी सहायता दी। भोजन तैयार हुआ। सब लोगों ने खाया, लेकिन दोपहर हो जाने के बाद भी ललना लौटकर न आई।

रासमणि खोजने के लिए गई। छलनामयी भोजन करने के बाद आस-पास के घरों में खोजने के लिए गई। उसने कहा—'अगर किसी के घर में वह होगी तो उसे बुला लाऊँगी। सन्ध्या होने से पहले लौटकर रासमणि ने कहा—'कही भी वह नही दिखाई पड़ी। घर में आई है क्या?'

'नही तो।'

सन्ध्या हो जाने पर छलना भी आई। उसने कहा—'दीदी तो इस गाँव में नहीं है।'

धीरे-धीरे रात बढ़ने लगी, लेकिन ललना लौटकर नही आई।

हाराणचन्द्र जब से लौटकर आये हैं तब से वे घर से निकले नहीं थे। ललना के सन्ध्या तक लौटकर न आने का हाल सुनकर उन्होंने कहा— बात तो सचमुच चिन्ताजनक है। लडकी गई कहाँ?' अन्त में वे भी उसे खोजने के लिए निकले। रात मे बारह बजे के बाद लौटकर आने पर उन्होने कहा—'बात तो बहुत चिन्ताजनक है। कुछ समझ में नही आता कि लडकी गई कहाँ?'

सारे दिन उपवास करने के बाद शुभदा रोने लगी, रासमणि रोने लगी, छलना भी रोई। केवल माधवचन्द्र के मुँह से वैसी कोई भी बात नही निकली। घर के सभी लोगो को इतना अधिक व्याकुल होकर रोते देखकर एक बार उसके मन में आया कि बात प्रकट कर दे लेकिन उसके बाद ही उसे स्मरण हो आया कि दीदी ने मुझे बतलाने से रोका है। इस लिए माँ के आँसू देख कर भी वह मौन ही धारण किये रहा।

दूसरा दिन आया। सूर्य उदय हुए, अस्त हुए, रात हुई। फिर प्रातः काल होने पर सूर्य उदित हुए। बाद को यथासमय सूर्यास्त भी हुआ लेकिन ललना नही आई। गाँव के सभी लोगों ने यह बात सुनी। सभी लोगों को वह प्रिय थी। इससे उसके इस प्रकार एकाएक गायब हो जाने के कारण गाँव के सभी लोग दु:खित हुए। किसी ने आँसू बहाये, कोई शुभदा को समझाने आया, कोई तरह-तरह का अनुमान कर उसके के गायब होने का कारण खोजने लगा। इसी प्रकार चार-पाँच दिन का समय बीत

गया।

शुभदा पहले माधवचन्द्र के सम्मुख भी ललना के लिए रो पड़ी थी लेकिन जब स्वयं माधवचन्द्र की दशा की तरफ उसका ध्यान गया तब उसने सारे आँसू रोक लिये। माँ का अधिक क्लेश देखने पर सम्भव था कि वह भीतर की बात कह डालता, किन्तु जब उसने देखा कि सारा मामला शान्त हो गया है तब वह कुछ नही बोला।

माधवचन्द्र के रंग-ढंग के कारण शुभदा को विस्मय अवश्य बहुत हो रहा था। वह सोच रही थी कि भला माधव क्यों नही अपनी बड़ी दीदी के सम्बन्ध में कुछ पूछता ? एक बार भी वह मुँह से नहीं निकालता कि दीदी कहाँ गई ? एक बार भी वह नहीं पूछता कि दीदी क्यों नहीं आई ? शुभदा को थोड़ी-बहुत शंका भी हुई कि माधव शायद कुछ जानता है। लेकिन साहस करके यह बात वह पूछ नहीं पाती थी।

ललना को घर से गायब हुए छः दिन बीत गये। आज नन्द धीवरिन ने मछलियाँ पकड़ते-पकड़ते देखा कि एक ऐसे स्थान पर, जहाँ कोई नहीं है, चौड़े लाल किनारे की एक साड़ी पड़ी हुई है। आधी वह पानी में है और आधी जमीन में। साड़ी भर में बालू लिपटी हुई है। हाराण बाबू के घर के नजदीक ही उसका भी घर था। वह साड़ी पहनते हुए ललना को काफी दिनों से देखती आ रही थी। इससे उसे सन्देह हुआ कि सम्भवतः यह साड़ी ललना की ही है। तुरन्त ही आकर उसने यह बात रासमणि को सूचित की। वे दौड़ती हुई गंगा-घाट पर गई। साड़ी पहचानने में देर नहीं हुई। वह ललना की ही थी।

रासमणि रोते-रोते वह साड़ी उठा लाई। शुभदा ने देखा, हाराणचन्द्र ने देखा, छलना ने देखा, पास-पड़ोस के और दस आदमियों ने देखा। बात ठीक ही थी। वह साड़ी ललना की ही थी। अपने हाथ से ही उसने उसे सी लिया था, अपने हाथ से ही उसने उसमें पेवन्द लगाया था और अपने हाथ से ही एक कोने में लाल रंग के धागे से उसने अपना नाम लिख रक्खा था। अब भी क्या कोई सन्देह करने की बात रह गई थी ? मूर्छित होकर शुभदा गिर पड़ी। सारे गाँव में यह बात फैल गई कि मुखर्जी के यहाँ की ललना पानी में डूबकर मर गई है।

दूसरा अध्याय

१

एक दिन नारायणपुर के जमीदार श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ चौधरी के मन में यह बात आई कि मेरा स्वास्थ्य खराब हो गया है, वायु-परिवर्तन न करने पर शायद बीमार पड़ जाऊँगा। सुरेन्द्र बाबू की आमदनी बहुत अधिक थी। अवस्था उनकी अधिक न थी। लगभग पच्चीस वर्ष होगी। इस अवस्था के अनुसार ही उन्हें शौक भी नाना प्रकार के थे। इससे साथियों-संगियों का अभाव नहीं था। बैठकबाजी करने वाले दो-चार व्यक्तियों को बुलाकर उन्होंने कहा—'मेरी तबीयत आजकल अच्छी नहीं मालूम पड़ती है। डाक्टरी औषधि के सेवन करने की कोई भी वैसी आवश्यकता नहीं है। मेरा तो विश्वास है कि वायु-परिवर्तन द्वारा ही सारी शिकायतें दूर हो जायँगी।'

इस विषय में किसी ने सन्देह नहीं प्रकट किया। सब ने कहा—'वायु-परिवर्तन से बढ़कर क्या औषधि हो सकती है?'

कुछ देर सोच-विचार करने के बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'कुछ समय तक नौका ही मे रहा जाय तो क्या कोई हानि होगी?'

सब लोगों ने कहा—'यह तो बहुत ही उत्तम विचार है। अब नौका-वास के लिए धूमधाम से तैयारी होने लगी। एक बड़ा-सा बजरा सजाया जाने लगा। दो-तीन महीने के लिए जो-जो वस्तुएँ जितनी मात्रा में आवश्यक हो सकती थीं, बजरे में रखी गईं। बाद को पञ्चाग देखकर सुरेन्द्र बाबू एक शुभ दिन उसमें जा बैठे। साथ में उनके गाने-बजाने वाले तथा कई संगी-साथी भी चले। उन सबके

बाच में एक गायिका को भी स्थान मिला। मल्लाहों ने पाल उठाकर देवी-देवताओं को स्मरण करते हुए नदी मे नौका छोड़ दी।

हवा अनुकूल थी। इसलिए पाल के सहारे वह बड़ा-सा बजरा राजहँसनी की भाँति चलने लगा। स्थान-स्थान पर लंगर डाल दिया जाता। सुरेन्द्र बाबू दल-बल लिए इधर-उधर घूमने लगे। इस प्रकार जल तथा स्थल के कितने ही स्थानों का भ्रमण किया गया। बहुत दिन बीत गए। अन्त में बजरा आकर कलकत्ता में लगा और जितने आदमी थे उन सब की इच्छा थी कि यहाँ अधिक दिन तक रहा जाय। किन्तु सुरेन्द्र बाबू इस पर तैय़ार न हुए। उन्होंने कहा—'कलकत्ता की वायु और स्थानों की अपेक्षा दूषित है। *यहाँ मैं न रहूँगा। बजरा उत्तर की ओर को बढ़ाओ।*'

सुरेन्द्र बाबू की इस आज्ञा के कारण कलकत्ता में केवल एक दिन रहकर बजरा उत्तर की ओर चल पड़ा। कलकत्ता से जब वह रवाना हो गया तब सुरेन्द्र बाबू के साथी लोग सोचने लगे—बजरे में बहुत दिनों तक निवास किया जा चुका। अगणित जल-कणों को लेकर चलने वाले स्निग्ध वायु सेवन के कारण शरीर को बड़ा सुख मिला; साथ ही स्वास्थ्य भी बहुत सुधर गया है। अब तो यदि लौटकर घर जा सकते और स्त्री-बच्चों का मुँह देख पाते तो शरीर की शान्ति सम्भवत: बढ सकती। मन में यह धारणा उत्पन्न हो आने के कारण और आगे बढ़ने के लिए बहुत से लोग अनिच्छुक हो उठे और घर लौट जाने की इच्छा प्रगट की।

सुरेन्द्र बाबू ने मना किया। तब बजरे के चन्दन नगर से आगे निकलने से पहले ही प्राय: सबों ने अपना-अपना रास्ता लिया। सुरेन्द्र बाबू तथा उनके नौकरों को छोड़कर अब बजरे में प्राय: कोई भी न रह गया। बाहरी आदमियों मे था एक व्यक्ति, जो तबला-सारंगी वगैरह बजाता था और एक थी नर्तकी जो सुरेन्द्र बाबू की बहुत कृपापात्र थी। उन्ही को लेकर बाबू साहब आगे बढ़े। देश को लौटने का उन्हें एक बार भी ख्याल नही आया।

एक दिन की बात है दिन का चौथा पहर था। सूर्य भगवान अभी तक अस्ताचल को नही पहुँच पाये थे। पश्चिम के आकाश पर बादल चढ़ने लगे। एक नाविक को बुलाकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'हरीचरण, देख

रहे हो न कि बादल चढ़ते चले आ रहे हैं। इसलिए बजरा किनारे लगा कर बाँध दो। किनारे पर पहुँचने पर सुरेन्द्र बाबू की निगाह एक काली-सी चीज की तरफ गई। नदी के उस पार तट से बिलकुल समीप ही जल के ऊपर वह तैर रही थी। सुरेन्द्र बाबू ध्यानपूर्वक उसे देख रहे थे। उन्हें ऐसा लग रहा था, मानो किसी मनुष्य का सिर है। फिर भी मनोरंजन के लिए उधर से अपना ध्यान हटाकर नौकर को आज्ञा दी कि उस्ताद जी को बुला लाओ।

फौरन उस्ताद जी आकर उनके सामने हाजिर हुए। उस्ताद जी को देखकर उन्होंने कहा —'उस्ताद जी शायद अब तूफान नहीं आयेगा, कुछ गाना-बजाना होना चाहिए।'

सिर हिलाकर उस्ताद जी ने कहा—'जैसी आज्ञा हो आपकी।'

सुरेन्द्र बाबू फिर वही काली-काली वस्तु देखने लगे।

थोडी देर के बाद ही एक गाने वाली युवती आकर पास ही गलीचे पर बैठ गई। उस्ताद जी भी बाजा-तबला लिए हुए बजरे की छत पर चढ़ रहे थे। यह देखकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'तुम नीचे जाओ, बाजे-तबले की जरूरत नहीं है, आज ऐसे ही गाना होगा।'

एक सूखी हँसी हँसकर उस्ताद जी नीचे चले गये।

जो स्त्री आकर गलीचे के ऊपर बैठी थी उसका नाम था जयावती। उम्र उसकी लगभग बीस वर्ष की थी। वह बहुत ही हृष्ट-पुष्ट थी और उसका शरीर सुडौल था। देखने में वह बुरी नहीं थी। सुरेन्द्र बाबू की कृपा वह बहुत दिन से प्राप्त करती चली आ रही थी। बगाली के घर की बेटी थी। साज-श्रृंगार में भी कुछ अधिक आडम्बर नहीं था। काले किनारे की एक देशी साड़ी और दो-एक जेवर पहन कर वह बहुत ही शांत और शिष्ट कुलवधू की तरह स्थिर होकर बैठी हुई थी। उसकी तरफ देखकर सुरेन्द्र बाबू जरा मुस्कराये और बोले—'जया, आज सारे दिन मैं तुम्हें क्यों नहीं देख सका हूँ ?'

'सिर मे दर्द हो रहा था, इसी कारण दिन भर पड़ी रही।'

'अब तो दर्द नहीं है ?'

तनिक हँसकर जयावती ने कहा—'थोड़ा-थोड़ा तो हो रहा है।'

'तो क्या गाना गा सकोगी ?'

जयावती हँसी। उसने कहा—'आज्ञा दीजिए।'

'आज्ञा की कौन सी बात है ? जो इच्छा हो, गाओ।'

जयावती ने एक गीत गाना शुरू किया।

सुरेन्द्र बाबू अन्यमनस्क भाव से जयावती का गीत सुनने लगे लेकिन उनकी निगाहें तो उस पार तैरती हुई उस काली-काली चीज पर ही लगी हुई थी। कुछ देर तक सुनते रहने के बाद जयावती का गीत खत्म होने के पहले ही वे बोल उठे—'देखो जया, वह क्या चीज वह रही है ?'

जयावती ने गाना बन्द कर दिया। ध्यानपूर्वक उस तरफ देखकर उसने कहा—'मालूम तो कुछ पड़ता है।'

'तो दुरबीन लेकर उसे देखना चाहिए।'

दुरबीन का बक्स आया। खोलकर सुरेन्द्र बाबू ने आँख से दुरबीन लगाई और देखने लगे कि क्या चीज है ?

जयावती ने पूछा—'वह क्या है ?'

'एक आदमी-सा मालूम पड़ता है।'

'इतनी देर से पानी में कर क्या रहा है ?'

'पता नहीं, देखने पर मालूम होगा।'

'तो एक आदमी भेज दीजिए।'

'मैं स्वयं जाऊँगा।'

सुरेन्द्र बाबू की आज्ञा के अनुसार नाविक ने बजरे से खोलकर छोटी नाव सामने लगायी। उस पर बैठकर सुरेन्द्र बाबू ने नाविक को आज्ञा दी—'उस पार से चलो।'

बोट जब लक्ष्य स्थान के समीप पहुँच गया तब सुरेन्द्र बाबू ने देखा कि एक तरुणी गले भर पानी मे खड़ी है। कमल के समान अनिन्द्य सुन्दर उसकी कान्ति है। मेघ के समान काले-काले उसके बाल नीले पानी पर चारों ओर फैले हुए हैं। सुरेन्द्र बाबू और भी पास पहुँच गये। परन्तु वह स्त्री न तो नौका पर चढ़ी और न उसने उस सम्बन्ध में कुछ इच्छा ही प्रकट की। पहले की तरह वह चुपचाप खड़ी रही।

कुछ देर के बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'क्या आस-पास कोई गाँव है ?'

तरुणी ने कहा—'मालूम नही। शायद नहीं है।'

'तो तुम यहाँ कहाँ से हो ?'

तरुणी कुछ न बोली।

'क्या तुम्हारा घर कहीं पास ही है ?'

'नही, बहुत दूर है।'

'तो यहाँ क्यों आई हो ?'

'हमारी नाव डूब गई है।'

'कब ?'

'कल रात में।'

'तुम्हारे साथ के आदमी कहाँ हैं ?'

'पता नही।'

'तुम अभी तक पानी में ही क्यों खड़ी हो ? आस-पास के किसी गाँव की तलाश क्यों नही की ?'

तरुणी फिर चुप रही।

बात का उत्तर न पाकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'तुम्हारा घर यहाँ से कितनी दूर होगा ?'

'दस-बारह कोस के करीब।'

'किस तरफ ?'

जिस तरफ को सुरेन्द्र बाबू का बजरा जा रहा था, उसी तरफ इशारा करके तरुणी ने कहा—'उस तरफ।'

जरा-सा सोचकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'मैं उसी तरफ जा रहा हूँ। मेरे बजरे मे एक स्त्री भी है, अगर तुम्हें किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो मेरे साथ चलो, तुम्हे मैं घर पहुँचा दूँगा।'

इस बात का कोई उत्तर न पाकर तरुणी की चुप्पी दूर करने की कोशिश करते हुए सुरेन्द्र बाबू ने पूछा—'चलोगी ?'

'चलूँगी।'

'तो आओ !'

इस बार फिर कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—'मेरी धोती बह गई है।'

अब सुरेन्द्र बाबू की समझ में यह बात आई कि यह इतनी देर से पानी में क्यों खड़ी है। इससे वे स्वयं तो तट पर उतर गये और नाविक को उन्होंने आज्ञा दी कि तुम बजरे में जाकर एक धोती ले आओ। बाद को तरुणी से उन्होंने पूछा—'कपड़ा मिल जाने पर मेरे साथ चलोगी न?'

तरुणी ने सिर हिलाकर अपनी सहमति प्रकट की।

नाविक कपड़ा लेकर लौट आया। उसके थोड़ी देर के बाद ही सुरेन्द्र बाबू सबको लिए हुए आकर बजरे में बैठे।

बजरे में पहुँचने पर सुरेन्द्र बाबू ने उस स्त्री को जयावती के हवाले किया। जयावती भी मधुर भाषण के द्वारा उसका स्वागत करके बहुत ही आदर पूर्वक अपने कमरे में ले गई और उसने सारी रात उसे वहीं रक्खा।

जयावती ने उस तरुणी को खाना खिलाया, बाद को अपने पास बैठाकर उसने पूछा—'तुम्हारा नाम क्या है बहन?'

'मेरा नाम तो मालती है। और तुम्हारा नाम?'

'मेरा नाम तो है जयावती। अच्छा, तुम्हारा घर कहाँ है?'

'महेशपुर में।'

'यहाँ से वह कितनी दूर होगा?'

'उत्तर की ओर करीब दस-बारह कोस की दूरी पर होगा।'

'और ससुराल तुम्हारी कहाँ है?'

थोड़ा-सा हँसकर मालती ने कहा—'कही नही।'

'यह कैसे? क्या शादी नहीं हुई?'

'शादी हुई थी परन्तु अब खत्म हो चुका है।'

जरा दु:खित भाव से जयावती ने पूछा—'कितने दिन हुए होगे?'

'बहुत दिन। वे सब बातें मुझे याद नही आती।'

वह बात दबाकर जयावती ने पूछा—'तुम्हारे घर में कौन-कौन प्राणी हैं?'

'कोई नही है। एक बुआ थी, शायद वे भी अब जिन्दा नही हैं।'

जयावती ने समझा कि शायद इस बात से नौका-दुर्घटना का संपर्क है। इससे इसके सम्बन्ध में भी बातें करना उसने ठीक नही समझा—'तो क्या तुम लोग कहीं जा रही थी?'

कुछ देर सोचकर मालती ने कहा—'सागर द्वीप को।'

'जो लोग तुम्हारे साथ थे उन सब का क्या हुआ?'

'मालूम नहीं।'

'घर जाओगी अब?'

'यही सोच रही हूँ।'

जरा-सा हँसकर जयावती बोली—'मेरे साथ चलोगी?'

'अगर ले चलोगी तो चलूँगी। तुम्हारे स्वामी ने मेरा बड़ा उपकार किया है। इसके सिवा घर में भी मेरा अपना कोई नहीं है। घर पहुँचने पर भी किसके पास रहूँगी यह मालूम नहीं है।'

जयावती ने मालती से साथ चलने को कह तो दिया, लेकिन उसके बाद ही उसने दाँत तले जीभ दबाई। मालती का उत्तर सुनकर वह मन ही मन शंकित भी हुई। जयावती के मन में यह बात आई कि मालती को साथ ले जाना बहुत अच्छा काम नहीं है।

मालती ने पूछा—'तुम्हारा घर कहाँ है?'

'नारायणपुर में।'

'कहाँ जाना हो रहा है?'

'घूमने के लिए। बाबू साहब की तबीयत अच्छी नहीं है, इसलिए।'

दो-चार बातें और हुईं। बाद को उन दोनो ही को नींद आ गई और सवेरा होने पर जागी।

२

रात भर सुरेन्द्र बाबू को अच्छी तरह नींद नहीं आई। इसीलिए बहुत सवेरे ही शय्या का परित्याग करके वे उठ गये। हाथ-मुँह धोकर गुडगुडी के नेचे में मुँह लगाये हुए वे आकर ऊपर छत पर बैठे। वायु का जोर था, पाल उठाकर मल्लाहों ने बजरा खोल दिया। कुछ दिन चढ़ जाने पर जयावती को बुलाकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा—क्या-क्या तुम उस औरत के बारे में मालूम कर सकी हो?

'सब कुछ।'

'उसका घर कहाँ है ?'

'महेशपुर में।'

'महेशपुर कहाँ है ?'

'यह नही मालूम है। यहाँ से दस-बारह कोस उत्तर है।'

'उसके बाप का क्या नाम है ?'

'बाप नहीं है।'

सुरेन्द्र बाबू ने हँस कर कहा—'तब तो मानो तुमने उसका सारा हाल जान लिया। उसके पति का क्या नाम है ?'

'पति नही है।'

'ससुराल कहाँ है ?'

'यह उसने नहीं बतलाया।'

कुछ सोचकर सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'वह किस जाति की है, क्या तुम्हें मालूम नही है ?'

'नही।'

'नाम जानती हो ?'

'जानती हूँ। उसका नाम मालती है।'

'अगर मालती को आपत्ति न हो तो जरा देर के लिए उसे मेरे कमरे में बुलाओ, मैं स्वयं उससे सब बातें पूछूँगा।'

जरा देर के बाद एक नौकर ने आकर कहा—'कमरे में आइए।'

सुरेन्द्र बाबू वहाँ जरा भी देर न करके कमरे में जा पहुँचे। नीचे गलीचे पर मालती सिर झुकाए हुए बैठी थी। जयावती भी पास ही खड़ी थी, किन्तु सुरेन्द्र बाबू के प्रवेश करते ही वह वहाँ से चली गई। वह जानती थी कि मेरे यहाँ रहने पर सम्भव है, सब बातें न हो सकें। सम्भव है कि बातचीत में कुछ असुविधा हो, इसलिए वह वहाँ से हट गई। किन्तु ओट में वह खड़ी थी या नहीं, सुरेन्द्र बाबू और मालती की सब बातें सुनने की उसके मन मे इच्छा थी या नही यह ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता।

कमरे में आकर सुरेन्द्र बाबू एक कोच पर बैठ गये। देर तक चुपचाप वे मालती के मुँह की तरफ देखते रहे। उसका मुँह बहुत ही मलिन था, बहुत ही विषादमय था। परन्तु देखने में वह बहुत ही मनोमुग्धकर

मालूम पड़ रहा था। उसके शरीर का रंग बहुत ही सुन्दर था, अंग-प्रत्यंग का गठन देखकर चित्त प्रसन्न हो उठता था। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा, मानो इतना सौन्दर्य उन्होंने पहले कभी देखा ही नहीं था।

सुरेन्द्र बाबू खयाल करने लगे कि यह स्त्री विधवा है। लेकिन जाति इसकी क्या है? इसी तरह कुछ देर तक सोच-विचार करने के बाद आखिर में उन्होंने मुँह खोलकर पूछा—'तुम्हारे पिता का क्या नाम है?'

मालती ने कहा—'हाराणचन्द्र मुखोपाध्याय।'

'क्या वे घर पर ही हैं?'

तनिक सोच-विचार कर मालती ने कहा—'नहीं, वे नहीं हैं।'

सुरेन्द्र बाबू ने समझ लिया कि इसके पिता की मृत्यु हो गई है। उन्होंने पूछा—'घर पर और कौन है?'

इस बार मालती बहुत देर तक चुप रही। बाद को धीरे-धीरे उसने कहा—'सम्भवतः कोई नहीं है।'

'इतने दिन तक तुम थी कहाँ?'

'वहीं थी। लेकिन हम लोग सागर जा रहे थे, रास्ते में नौका डूब गई।'

'तुम्हारी ससुराल कहाँ है?'

''कालीपाड़ा में।''

'वहाँ तुम्हारा कौन है?'

'कोई न कोई होगा ही। लेकिन उन सबको मैं पहचानती नहीं।'

'वहाँ कभी गई नहीं हो?'

'शादी के समय केवल एक बार गई थी।'

कुछ देर तक सोचते रहने के बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'तुम्हारे पिता के यहाँ भी कोई नहीं है, ससुराल में भी कम-से-कम तुम्हारे जानते में कोई नहीं है। ऐसी हालात में इस समय तुम जाओगी कहाँ?'

'कलकत्ता।'

'कलकत्ता! वहाँ तुम्हारा कौन है?'

'कोई नहीं?'

'कोई नही है। तब कलकत्ते में कहाँ रहोगी ?'

'किसी न किसी का घर ढूँढ लूँगी।'

'उसके बाद।'

मालती चुपचाप बैठी रही।

सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'क्या तुम भोजन बनाना जानती हो।'

'जानती हूँ।'

'कलकत्ते में यदि तुम्हें कहीं भोजन बनाने का काम मिल जाय तो तुम क्या करोगी ?'

'हाँ।'

सुरेन्द्र बाबू बड़ी देर तक चुप रहे। बाद को धीरे-धीरे उन्होने कहा—'क्यो मालती, कलकत्ता के अलावा अगर और जगह तुम्हें काम मिल जाय तो क्या तुम करोगी ?'

सिर हिलाकर मालती ने कहा—'नहीं।'

इस उत्तर से सुरेन्द्र बाबू कुछ दुःखी-से हुए और कुछ देर तक सोच-विचार करने के बाद उन्होंने कहा—'कलकत्ते में तुम जो कुछ प्राप्त करने की आशा करती हो, दूसरी जगह तुम उससे अधिक पाओ तो करोगी या नही ?'

मालती ने पहले की ही तरह सिर हिलाया—'कलकत्ता के सिवा मैं और कही न जाऊँगी।'

सुरेन्द्र बाबू ने एक लम्बी साँस ली। उसका मुर्झाया हुआ मुख देखकर मालती भी समझ गई कि मेरी बात सुरेन्द्र बाबू के मन के अनुकूल नही हुई। इससे उन्होंने शायद दु.ख का अनुभव किया है।

दूसरी तरफ देखते हुए सुरेन्द्र बाबू ने कहा—'जो लोग कलकत्ते को जानते नही उनके लिए वह बहुत ही बुरी जगह है। तुम्हारे मन की जो इच्छा हो, उसी के अनुसार काम करो। परन्तु रहना खूब सावधानी से। तुमसे एक बात और कहता हूँ। मेरा नाम है सुरेन्द्रनाथ चौधरी। मेरा घर नारायणपुर में है। यदि कभी तुम्हारा कोई काम पड़े तो मुझे सूचना देना या मेरे घर आ जाना। विपत्ति के समय तुम्हारा कुछ न कुछ उपकार कर सकता हूँ।'

मालती सिर झुकाए मौन भाव से बैठी रही।

'एक सप्ताह के बाद हम लोग लौटकर कलकत्ता की तरफ चलेंगे। तब तक तुम इसी बजरे में रहो। कलकत्ता पहुँचने पर तुम उतर जाना।'

सुरेन्द्र बाबू के चले जाने पर मालती अपनी जगह पर आकर रोने लगी। सुरेन्द्र बाबू की बातों से उसने वेदना का अनुभव किया था, किन्तु उसके रोने के और भी सैंकड़ों-हजारों कारण थे। सुरेन्द्र बाबू ने उसकी लज्जा का निवारण किया था, बजरे में उसे स्थान दिया था और भी अधिक उपकार किया था, भविष्य में उपकार करने की आशा भी दे रहे थे। परन्तु मालती क्या केवल भोजन बनाने की नौकरी करने के उद्देश्य से कलकत्ता जा रही थी। स्नेहमयी माता, रोगशय्या पर पड़े हुए भाई, असहाय परिवार का परित्याग करके क्या वह केवल उदर-पूर्ति के लिए आई थी। पाचिका का कार्य करने की बात तो केवल छलमात्र थी। वह चाहती थी धन पैदा करना और कलकत्ते के अलावा और कहीं अधिक मात्रा में धन प्राप्त होना सम्भव नहीं था।

मालती ने धन पैदा करने का मार्ग निर्धारित कर लिया था। वह जानती थी कि मैं रूपवती हूँ और अनुपम रूपवती हूँ। कलकत्ता बड़ा और समृद्धशाली नगर है। वहाँ यह रूप लेकर जाने पर इसके विक्रय के लिए चिन्ता न करनी पड़ेगी। इस रूप का मूल्य भी यथासम्भव आशा से कहीं अधिक मिलेगा। इसी से वह कलकत्ता जाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हुई थी। उसने सोचा था कि वहाँ मेरा आदर होगा। अभी मैं दरिद्र हूँ, बाद को धनवती हो जाऊँगी। अभी तक दुःख से जीवन बीत रहा था, अब सुख से बीतेगा। परन्तु मन में इस तरह की धारणा बद्ध-मूल कर रखने पर भी भला वह रोती क्यों थी? दुःख किस बात का था उसके मन में। लेकिन इसे तो केवल वही बता सकती थी।

दूसरे दिन बजरा हलुदपुर नामक ग्राम के नीचे होकर चलने लगा। मालती खिड़की खोलकर बँधे हुए घाट की तरफ ताकती रही। घाट पर कोई मनुष्य-नामधारी जीव नहीं था। जिस आशा से मालती ताक रही थी, वह पूरी नहीं हुई। गाँव छोड़कर बजरा दूर चला गया। मालती खिड़की बन्द करके सिसक-सिसककर रोने लगी। जयावती समीप जाकर

बैठी। आँखें पोंछकर स्नेहपूर्वक वह बोली—'रोने से लाभ क्या होगा बहन! उन लोगों का समय हो गया था इसीलिये माता गंगा ने उन्हें गोद में ले लिया है।' जयावती के मन में यह बात आई कि नौका डूबने के कारण जो लोग जलमग्न हो गये हैं, मालती उन्हीं के लिए रो रही है।

आँखें पोंछकर मालती उठकर बैठ गई। जयावती उसकी अपेक्षा अवस्था में अधिक थी। उससे वह स्नेह किया करती थी, उसे अपनी छोटी बहन समझती थी। विशेषतः यह सुनकर कि मालती कलकत्ता में उतर जायगी, उसका स्नेह और भी बढ़ गया था। उसके उठकर बैठने पर जयावती तरह-तरह की बातों से उसे भुलाने की कोशिश करने लगी।

३

श्री काशीधाम में मृत्यु होने पर शिवलोक प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा हिन्दुओं का विश्वास है। इसलिए सदानन्द की बुआ काशी गई। वहाँ से वे लौटी नहीं। सदानन्द ने पुण्यात्मा बुआ का काशीधाम में गंगा जी के तट पर दाह-संस्कार किया और चिरकाल तक उनके शिवलोक में वास करने की व्यवस्था कर दी। बाद को वह फिर हलुदपुर नामक ग्राम वापस आया।

बहुत रात हो जाने पर पागल सदानन्द ने सूने घर में प्रवेश किया। अपने हाथ से बनाकर उसने थोड़ा-सा भोजन किया। तब उसके मन में आया कि मैं जाकर हाराण बाबू के घर का हाल ले आऊँ परन्तु बाद को उसके मन में आया कि इतनी रात में लोगों से मिलने-जुलने में सुविधा न होगी, इससे उनके यहाँ जाने का विचार उसने छोड़ दिया और बिस्तर लगाकर वह सो गया।

काशी में निवास करते समय सदानन्द के मन से हाराणचन्द्र के परिवार की समस्याएँ दूर नहीं हो सकी थीं। हाराण बाबू के चरित्र सम्बन्धी दोषों के कारण कुमुदा के दुर्भाग्य की बात उसके मन में प्रायः आया करती। रोग-शय्या पर पड़ी हुई बुआ की सेवा में अत्यन्त ही

व्यस्त रहने पर भी वह उसको भूल नहीं पाता था। बीच में एक बार पत्र लिखकर भी उन सब का हाल लिया था, परन्तु बाद को किसी भी पक्ष ने किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार नहीं किया। इससे इधर एक महीने से हाराण बाबू के यहाँ का कोई भी समाचार सदानन्द को पता नहीं था।

वापस घर आ जाने पर सदानन्द के हृदय में हाराण बाबू के परिवार की समस्याएँ विशेष रूप से उदित हो आईं। रात में बहुत देर तक उसे नींद नहीं आ सकी।

दूसरे दिन सदानन्द फूल, बेलपत्र, विश्वेश्वर का प्रसाद आदि बहुत-सी वस्तुएँ लिए हुए सीधे हाराण बाबू के यहाँ जाकर उपस्थित हुआ। घर के भीतर पैर रखते ही उसने शुभदा को देखा। उस वक्त वह आँगन में झाड़ू दे रही थी। झाड़ू रखकर सिर पर का कपड़ा जरा-सा खींच लेने के बाद शुभदा ने कोमल स्वर में कहा—'कब आये सदानन्द ?'

'कल रात में।'

'सब लोग अच्छे हैं न ?'

सदानन्द दुःखित भाव से थोड़ा-सा हँसा। बाद को वह बोला—'सब लोगों में तो बुआ जी अकेली थी सो उनकी काशी जी में ही मृत्यु हो गई।'

शुभदा यह सुनकर अपने को सम्भाल न सकी, आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। बड़ी देर के बाद वे बोली—'भैया, ललना भी अब नहीं रही।'

विस्मित होकर सदानन्द ने कहा—'नहीं है ! कहाँ गई ?'

रोते-रोते शुभदा बोली—'जायगी कहाँ भैया ? बेटी मेरे परिवार का दुःख क्लेश देखते-देखते ऊब गई थी, इससे उसने आत्महत्या कर ली। पाँच दिन हुए, गंगा तट पर उसकी धोती मिली है।'

शुभदा फफक-फफक कर रोने लगी। सदानन्द ने भी आँखें पोंछीं। लेकिन उसकी आँखों में दो-एक बूँद से अधिक आँसू नहीं आये थे। शुभदा जब तक शान्त नहीं हुई तब तक वह चुपचाप बैठा रहा, आखिर उनके शान्त होने पर उसने पूछा—'कुछ कह नहीं गई है वह ?'

'कुछ नही।'

'हाराण चाचा कहाँ हैं ?'

आँखें पोंछकर शुभदा बोली—'कह नहीं सकती। किसी-किसी दिन वे घर आते जरूर हैं।'

'आजकल वे करते क्या हैं ?'

'यह भी नहीं जानती।'

'माधव कैसा है ?'

'पहले की ही तरह।'

'और सब लोग ?'

'अच्छी तरह हैं।'

सदानन्द उठने जा रहा था। शुभदा ने कहा—'तुम्हारे यहाँ भोजन कौन बनावेगा ?

'मैं स्वयं बना लूंगा।'

कुछ सोचकर शुभदा बोली—'यहाँ भोजन करने में क्या असुविधा है?'

'असुविधा क्या है ? लेकिन इसके लिए कोई चिन्ता नही है। भोजन बनाने में कोई कष्ट नही होता।'

'इससे क्या ? तुम यहीं भोजन करना।'

कुछ सोचकर सदानन्द ने कहा—'किन्तु आज नही। आज बुआ जी का तर्पण करना होगा।'

शुभदा ने सोचा—सदानन्द ठीक ही कहता होगा, इससे उसने फिर कुछ नही कहा।

घर आकर सदानन्द ने द्वार बन्द कर लिया और जमीन पर ही वह लेट गया। वह प्रातःकाल आठ बजे का समय था। बाद को जब उसकी नीद टूटी तब रात के आठ बजे थे। शुक्ल पक्ष की रात थी। चाँदनी का प्रकाश चारों दिशाओं में प्रकाशित किए हुए था। सदानन्द घर से निकल पड़ा। एक बगीचे को पार करके शारदाचरण के पिछवाड़े वह पहुँचा। वहाँ एक खिडकी के पास खड़े-खड़े काफी देर तक देखने के बाद उसने पुकारा—'शारदा !'

शारदा घर ही मे था। सदानन्द की आवाज उनके कानों मे पड़ी।

खिड़की के पास आकर वह बोला—'कौन है ?'

सदानन्द ने कहा—'मैं हूँ।'

'कौन ? सदानन्द !'

'हाँ।'

'तुम कब आये ?'

'कल रात में।'

'इस तरह क्यों खड़े हो ? चलो बैठक में बैठें।'

'नहीं, उस तरफ मैं नहीं जाऊँगा। तुम यहीं आओ।'

शारदाचरण के पास आ जाने पर सदानन्द ने कहा—'ललना मर गई है, यह बात तुम जानते हो ?'

बहुत ही दु:खी भाव से शारदाचरण ने कहा—'जानता हूँ।'

'क्यों मरी, क्या यह भी तुम्हें मालूम है ?'

'यह तो नहीं मालूम है, लेकिन मेरा अनुमान यह है कि पारिवारिक दु:ख-क्लेश के कारण उसने आत्महत्या कर ली है।'

गौर से शारदाचरण की तरफ देखते हुए सदानन्द ने कहा—'और कुछ नहीं जानते हो ?'

'नहीं।'

अपनी दृष्टि को अधिक-से-अधिक तीक्ष्ण करके सदानन्द ने कहा—'तुम अधर्मी हो। पारिवारिक दु:ख-क्लेश के कारण एक आदमी प्राण दे सकता है और तुम सामने ही वर्तमान रहकर भी उसकी किसी प्रकार की सहायता नहीं कर सकते हो।'

सदानन्द की भाव-भंगी देखकर शारदाचरण जरा-सा संकुचित हो उठा। उसका संकुचित होना स्वाभाविक भी था। बात यह थी कि सदानन्द से उसकी बाल्यकाल से ही घनिष्ठ मित्रता थी। इससे उन दोनों को एक दूसरे का रत्ती-रत्ती हाल मालूम था। शारदाचरण के सम्बन्ध की बचपन की ऐसी कोई भी बात नहीं थी जो सदानन्द को मालूम न रही हो। परन्तु इसीलिए आज वह शारदाचरण को चार बातें सुना देता ऐसी प्रकृति सदानन्द की नहीं थी। परन्तु शारदाचरण कुछ और ही समझ बैठा। उसने सोचा कि बचपन की बातों को याद करके यह मुझे ताने देने

आया है। थोड़ी देर तक सोचने के बाद उसने कहा—'सदानन्द, ये बातें कहने से अब लाभ क्या है ? तुम्हें यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि अभी मेरे पिता जीवित हैं। उनके वर्तमान रहने पर क्या मैं इच्छानुसार हर एक आदमी की सहायता कर सकता हूँ ? विशेषत: ऐसी परिस्थिति मे जब कि उसने मुझसे कभी कुछ कहा नहीं।

सदानन्द विस्मित हो गया। उसने कहा—'कुछ कहा नही ? कभी वह तुमसे कुछ कहने नही आई थी ?'

'इधर तो नहीं आई थी। आज से बहुत दिन पहले एक बार जरूर आई थी।'

'किस मतलब से ? कहाँ मिली थी वह तुमसे ?'

शारदाचरण ने कहा—'सुनो, मैं सब बतला रहा हूँ। आज से महीना भर पहले की बात है। बड़ी रात को शिवमन्दिर में आने के लिए उसने मुझसे अनुरोध किया था। मेरी जाने की इच्छा नही थी, परन्तु फिर भी गया था।'

रुँधे हुए स्वर मे सदानन्द ने कहा—'जाने की इच्छा नही थी ?'

शारदाचरण ने कहा—'कह तो दिया भाई।'

सदानन्द ने मानो वह बात सुनी ही नही। उसने कहा—'तब क्या हुआ ?'

'उसने मुझसे शादी करने के लिए अनुरोध किया था।'

'क़िसके साथ ?'

'खुद अपने साथ।'

'खुद अपने साथ ? अर्थात् ललना खुद तुम्हारे साथ शादी करने के लिए इच्छुक थी ? तब तुमने क्या कहा ?'

अपनी बचपन की बातो को याद करके शारदा बहुत ही लज्जित हुआ। कुछ झुंझलाहट के साथ उसने कहा—'मैं·· मैं भला कैसे कर सकता था यह काम ? पिता जी अभी जिन्दा है।'

कुछ क्रोध के कारण, कुछ दुःख के कारण और कुछ मन के आवेग के कारण सदानन्द बोल उठा—'तुम्हारे पिता के जिन्दा रहने से क्या लाभ है ?'

अब शारदा गुस्से में भर उठा। पिता के विरुद्ध वह कोई बात सुन नहीं सकता था। वह बोला—'लाभ-हानि की बात वे अच्छी तरह जानते हैं। इस विषय पर विचार करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। यह सब मन में ले आना हमें शोभा भी नहीं देता। जो भी हो मैंने कह दिया कि 'मैं तुम्हारे साथ शादी नहीं कर सकता।'

'तब क्या वह चली गई ?'

'नहीं तब भी वह नहीं गई। उसने कहा—तो छलना के ही साथ शादी कर लो।'

'तुमने स्वीकार नहीं किया ?'

सदानन्द का मुख देखकर तथा उसका मनोभाव ताड़कर शारदाचरण मुस्कराकर बोला—'अस्वीकार भी नहीं किया। मैंने उससे कहा था कि पिता जी की आज्ञा मिलने पर कर सकता हूँ।'

सदानन्द ने कहा—'तो पिता की आज्ञा नहीं हुई ?'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'यह बतलाने की मेरी इच्छा नहीं थी लेकिन जब तुम पूछते ही हो तो बतलाता हूँ, सुनो। पिता जी मेरी शादी में कुछ धन प्राप्त करना चाहते हैं। हाराण बाबू क्या दे सकते थे ?'

यह बात सुनकर भी सदानन्द ने अनसुनी कर दी। उसने कहा—'तुम्हारे पिता कितना धन चाहते हैं ?'

'यह मैं नहीं बतला सकता।'

'उनकी अर्थ-प्राप्ति की आशा यदि पूर्ण हो जाय तो भी क्या किसी प्रकार की आपत्ति हो सकती है ?'

'शायद नहीं।'

'स्वयं तुम्हें तो किसी प्रकार की आपत्ति नहीं ?'

'किसी प्रकार की नहीं है।'

'अच्छी बात है, तब देखा जायगा।' इतना कहकर सदानन्द फिर झाड़-झंखाड़ पार करता हुआ लौट गया।

शारदाचरण ने कहा—'जाते कहाँ हो ? बैठोगे नहीं थोड़ी देर ?'

'नहीं।'

'सदानन्द, मेरा कोई दोष नही है।'

'शायद नहीं है। परन्तु भगवान जाने, दोष है या नही, मैं कुछ कह नहीं सकता।'

'तो क्या तुम नाराज हो गये ?'

'नही।'

लौट कर घर आने पर सदानन्द कुछ देर तक उस कमरे मे इस कमरे में और इस कमरे से उस कमरे में घूमता रहा। बाद को वह फिर भीतर से निकल आया। रास्ता पकड़े हुए वह गंगा घाट की तरफ चला। भागीरथी की छोटी-छोटी तरंगें बँधे हुए घाट की सीढ़ी पर कल-कल, छल-छल करती हुई आती और धक्का मारकर चली जाती, बाद को वे फिर लौट आती। सदानन्द कुछ देर तक उन सबको देखता रहा। कुछ दूरी पर एक बजरा दिखाई पड़ा। गंगा के प्रशान्त वक्ष पर छप-छप डाँड़ चलाते हुए नाविक लोग उसे खे रहे थे। सदानन्द कुछ देर तक अन्यमनस्क भाव से उसकी तरह देखता रहा। बाद को घाट की सबसे नीचे की सीढी पर बैठकर उसने पानी में पैर डुबो दिये और आकाश की तरफ देखता हुआ वह अपनी धुन मे गाने लगा।

४

उस दिन रात के समय जब कि चन्द्रमा की उज्ज्वल किरणो मे गंगा का प्रशान्त वक्ष प्रकाशित था, सुरेन्द्र बाबू का विशालकाय बजरा उत्तर से दक्षिण की तरफ चला जा रहा था। छप-छप करके दो डाँड धीरे-धीरे पड रहे थे। देखने में वह ऐसा जान पडता, मानो कोई मनुष्य शरीर ढीला करके पानी के ऊपर पड़े-पडे धारा के साथ-साथ बहता चला जा रहा है, पानी को पीछे की तरफ ठेलने के लिए वह धीरे-धीरे हाथ चलाने लगता है।

बजरे की छत पर बैठे-बैठे सुरेन्द्र बाबू जयावती से बातें कर रहे थे।

मालती नीचे के कमरे में बैठी हुई थी। खिड़की की तरफ से देख-देखकर वह गंगा जी की चाँदी के समान शुभ्र तरंगें गिन रही थी, साथ-ही-साथ वह आँसू पोंछती जा रही थी। मालती समझ गई कि अब हलुदपुर ग्राम आ रहा है। कुछ देर के बाद वह गंगा के तट पर वर्तमान पीपल का पेड़ देख पाई। पीपल के पास ही जो बँधा हुआ घाट था वह चन्द्रमा की किरणों से चमक रहा था। मालती ने एक बार उस पर भी निगाह दौड़ाई। उसने यही देखा कि पास हलुदपुर ग्राम निःस्तब्ध भाव से निद्रा की गोद में पड़ा हुआ है। मालती अपने मानस चक्षु से उस ग्राम का एक-एक घर, प्रत्येक नर-नारी का नींद से अभिभूत मुख देखने लगी। यह वही घाट था जिस पर वह उस वक्त जब कि ललना थी, दोनों वक्त स्नान करने, कपड़े धोने तथा हाथ पैर धोने के लिए जाया करती थी। पीतल के घड़े में भर-कर इस घाट पर से पानी ले गये बिना न तो पीने को होता, न भोजन बन पाता। मालती अब मालती थी। अब वह ललना नहीं रह गई थी। तो भी ललना के जीवन के सम्बन्ध की एक भी बात वह अभी तक भूल नहीं पाई थी। शुभदा को वह भूल नहीं सकती थी, न माधव को भूल सकती थी और न हाराण मुखर्जी को भूल सकती थी, उन्हीं सबके विषय की बातें वह सोच रही थी और रोती भी जाती थी।

मालती एक और आदमी को किसी प्रकार नहीं भूल पाती। वह था पागल सदानन्द। हलुदपुर के पास बजरा आने से पहले ही उसने अपने कल्पना रूपी नेत्रों से कितने आदमियों को देखा। वह सोचने लगी—छलना, विन्दो, कृष्णा बुआ, गिरिजाया, शैलवती, रमा इन सब में से कहीं कोई भी तो नहीं है। सदानन्द अवश्य अपने पागलपन के लक्षणों से युक्त मुख लिए हुए स्मृति का आधा अंश दखल किए बैठा है, कानों में मानों उसके गीत का स्वर आ रहा है, मालती को ऐसा लगा मानों पागल सदानन्द का मस्ती से भरा हुआ स्वर करुण होकर अस्पष्ट भाव से कहीं से आ-आकर मेरे कानों में प्रवेश कर रहा है। मालती विस्मित हुई। बहुत ही शान्त होकर वह एकाग्र मन से सुनने लगी। उसे निश्चित रूप से यह मालूम पड़ रहा था कि ठीक सदानन्द की तरह कोई गीत गा रहा है।

बजरा और आगे बढ़ आया। अब मालती ने देखा कि घाट पर कोई

आदमी नीचे पानी में पैर रक्खे हुए बैठा है। गीत उस वक्त समाप्त हो चुका था। मालती उस आदमी को अच्छी तरह पहचान न सकी, लेकिन उसे निश्चय हो गया कि वह सदानन्द के अतिरिक्त और कोई हो नहीं सकता। पागल और सनकी आदमी को छोड़कर इतनी रात में गंगा जी की नति सुनने के लिए कौन दौड़ा आयेगा। मालती अब फिर बैठ कर रोने लगी। सदानन्द के सम्बन्ध की बातों को जितना ही वह याद करती, उतनी ही अधिक याद उसे ललना के जीवन की घटनाओं की भी आती। शुभदा, माधव, बुआ जी तथा भाग्यहीन हाराण मुखर्जी—ये सभी लोग सदानन्द की स्मृति को बीच में रखकर घूम-घूम कर आने लगे। अन्त में बहुत अधिक रात बीत जाने पर रोते-रोते मालती सो गई।

नींद टूटी, सवेरा हुआ, सूर्य उदय हुए और क्रमशः दिन चढ़ने लगा, लेकिन मालती उठ न सकी। उसके सारे अंग में बड़े जोर का दर्द था। शरीर गरम हो गया, सिर दर्द कर रहा था; साथ ही और तरह-तरह के उपसर्ग आ जुटे थे। दासी ने आकर मालती के शरीर पर हाथ रखा और बोली—'तुम्हें बुखार हो आया है।' मालती चुप रही। जयावती ने भी आकर मालती के शरीर पर हाथ रक्खा और खिड़की खुली हुई देखकर कुछ नाराज हुई। उसने कहा—'कोई इस तरह ठीक खिड़की के सामने सोता है। सारी रात पुरवाई हवा लगती रही, इससे शरीर गरम हो गया है।

मालती ने धीमे स्वर में कहा—'नींद लग गई थी, इससे खिड़की बन्द नहीं की जा सकी।'

खबर पाकर सुरेन्द्र बाबू स्वयं मालती को देखने आये। उसे सचमुच बुखार हो आया था। साथ में वे होमियोपैथिक दवाई का बक्स लिए हुए थे। उसमें से निकालकर उन्होंने उसे थोड़ी-सी दवा खिलाई और जयावती से आग्रह पूर्वक कहा—'इसे खूब होशियारी के साथ रक्खो।'

जयावती आकर मालती के पास बैठी। कमरे में जितनी खिड़कियाँ और रोशनदान थे वे सब बन्द थे। मालती के दृष्टिपथ पर अब कोई भी वस्तु नहीं आ रही थी। यहाँ तक कि बजरा चल रहा है या ठहरा है, यह भी वह ठीक-ठीक नहीं समझ पाती थी। कमरे में जयावती के अतिरिक्त

और किसी को न देखकर उसने कहा—'दीदी !'

मालती ने जयावती को दीदी कहकर पुकारना शुरू कर दिया था—'क्या तुम बता सकती हो कि हम लोग कितने दूर आ गये है?'

जयावती ने कहा—'आठ दस कोस के लगभग ।

मालती को यह जानने की इच्छा नही । उसने पूछा—'कलकत्ता अभी कितनी दूर है ?'

'अब भी प्रायः दो दिन का रास्ता है ।'

मालती ने चुप रहकर कुछ सोच लिया । बाद को वह बोली—'दीदी अगर तब तक मैं अच्छी न हो सकूं ?'

जयावती इस बात का मतलब समझ गई। स्त्री ऐसे समय मन में ईर्ष्या का भाव नही रखती। जरा-सा हँसकर बोली—'तब हम लोग तुम्हें इसी पानी मे बहा देंगे ।'

मालती भी जरा हँसी। किन्तु इस हँसी और उस हँसी में जरा-सा अन्तर था। वह बोली—'ऐसा होता तो अच्छा ही था दीदी ।'

जयावती संकुचित हो उठी। इस बात का और भी अर्थ हो सकता है, यह सोचकर उसने मुँह से बात नही निकाली थी। इससे वह बोली 'छिः! ऐसी बात भी कोई करता है ।'

मालती चुप हो गई। उसने उत्तर नहीं दिया। मौन भाव से वह सोच रही थी कि जयावती की बात अगर [illegible]च हो जाय तो कैसा होगा? क्या अच्छा होगा वह? नही, यह अच्छा न होगा। उसकी मरने की इच्छा नहीं थी। उचित रूप से प्रश्न करने पर [illegible]ह यही उत्तर देती कि मरने में जो दुःख है उससे कहीं अधिक दुः[illegible] मुझे हो रहा है, किन्तु फिर भी मैं मर न सकूँगी। मैं मौत से नही [illegible] तो भी मुझे मरने की इच्छा नही है। जो लोग इस बात [illegible]इच्छा कर सकते हैं उनका दुःख शायद अधिक नही होता।

सोचते-सोचते एक बूँद आँसू मालती की आँखों से टपक पड़ा। जयावती ने स्नेहपूर्वक उसे पोछ दिया। वह बोली—'चिन्ता क्यों करती हो बहन! पुरवाई हवा लग जाने के कारण शरीर जरा गरम हो गया है, इसके लिए क्या इस तरह चिन्तित होना चाहिए?'

इतना कहकर जयावती कुछ देर तक सोचती रही। बाद को सावधान होकर वह बोली—'इसके सिवा यदि बुखार इस तरह न शान्त होगा तो उसका भी तो उपाय है। पास ही कलकत्ता है, वहाँ क्या डॉक्टरों और वैद्यों की कमी है।'

कमी किसी वस्तु की नहीं थी। जरूरत भी किसी वस्तु की नहीं पड़ी। बजरा जिस दिन आकर कलकत्ता पहुँचा, उस दिन मालती को बुखार नहीं था। लेकिन शरीर उसका बहुत ही कमजोर था। अभी तक वह कुछ खा नहीं सकी थी। कलकत्ता नगर से जरा दूर और आगे बढ़कर उस पार बजरा लंगर डालकर खड़ा कर दिया गया। कमरे की खिड़की खुली हुई थी। उसी से मुँह निकालकर मालती देखने लगी। कितने जहाज थे, कितने जहाजों के केवल मस्तूल दिखाई पड रहे थे। कितनी बड़ी-बडी नौकाएँ थीं। कितनी ही राजप्रासाद के समान ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं की चोटियाँ पंक्तिबद्ध से दिखाई पड़ रही थीं! मालती को भय हो रहा था। वह सोच रही थी, क्या यही कलकत्ता है? यदि हाँ, तो इतने झमेले, इतने कोलाहल में मेरी बातों को भला कौन सुनेगा! ऐसे नगर में, जहाँ एक-एक आदमी काम-काज के भार से दबा रहता है, मुझे देखने का अवकाश किसे होगा! परन्तु कुछ भी हो अब तो मुझे इस नगर मे प्रवेश करना ही होगा। जिस उद्देश्य से मैंने यह अत्यन्त ही साहसपूर्ण काम कर डाला है, जिनका मुख देखकर मैं नरक में डुबकियाँ लगाने को तैयार हुई हूँ, जिनको सुखी करने की इच्छा से मैंने अपने इस लोक और परलोक के सम्बन्ध में तनिक भी सोच-विचार नहीं किया, उन सबको मैं इतनी जल्दी भूल न सकूँगी। आज न सही तो कल इस आश्रय का परित्याग करना ही होगा। जो काम करना है फिर उससे डरना क्या?

मालती ने जाने का तय कर लिया, किन्तु सुरेन्द्र बाबू ने यह बात फैला दी कि बजरा यहाँ पर तीन-चार दिनों तक और बँधा रहेगा। मालती का शरीर जब ठीक हो जायगा तब जहाँ चाहेगी, वहाँ चली जायगी। जिस दिन वह जायगी, उसी दिन बजरा भी खुलेगा। यह बात सुनकर मालती ने सुरेन्द्र बाबू को मन-ही-मन बहुत धन्यवाद दिया। अन्तः-करण से प्रार्थना भी वह यही कर रही थी। बात यह है कि काम चाहे कितना

ही आवश्यक और महत्वपूर्ण क्यों न हो, आश्रय का परित्याग करके निराश्रित होने के लिए मन को सहमत करना कोई आसान काम नहीं होता। इससे पहले ही वह इस सम्बन्ध में अपने आपसे कितना कलह कर चुकी थी। अब मानो उसे इतना मौका मिल गया कि वह जरा-सा दम लेने के बाद मन को समझा-बुझाकर वैसा करने के लिए तैयार कर ले।

दूसरे दिन दोपहर को जयावती ने घूमकर कलकत्ता नगर देखने का इरादा किया। गाड़ी और घोड़ी ठीक करके नौकर ने उसे सूचना दी। जयावती ने साथ चलने के लिए बाबू साहब से भी बड़ा आग्रह किया, परन्तु वे किसी प्रकार राजी नहीं हुए। जयावती के साथ जाने की मालती ने इच्छा प्रकट की थी, किन्तु उन्होंने उसे भी रुकवा दिया और कहला भेजा कि अभी तुम्हारा शरीर अच्छा नहीं है, कहीं फिर न बुखार हो जाए। इससे लाचार होकर एक नौकरानी और एक नौकर लेकर जयावती को अकेले ही भ्रमण के लिए जाना पड़ा।

मालती अन्दर कमरे में लेटी हुई थी। एकाएक द्वार खोलकर सुरेन्द्र बाबू ने उसमें प्रवेश किया। तब संकुचित होकर मालती उठकर बैठ गई। जरा दूरी पर सुरेन्द्र बाबू भी बैठे। इसी प्रकार काफी वक्त बीत चला। वे आये थे यह सोचकर कि मालती से कुछ बातें करूँगा, परन्तु उसके पास आने पर उन्हें मुँह खोलने का साहस ही नहीं हो रहा था अन्त में कुछ सोच-विचार करने बाद वे बोले—'क्या तुम यहाँ अवश्य ही उतर जाओगी ?'

सिर हिलाकर मालती बोली—'हाँ।'

'क्या तुमने इस विषय में अच्छी तरह विचार कर लिया है ?'

मालती उसी तरह बोली—'कर लिया है।'

'कहाँ जाओगी ?'

'यह तो नहीं जानती हूँ।'

सुरेन्द्र बाबू हँस पड़े। उन्होंने कहा—'तब तुमने क्या सोच-विचार किया है ? आज नहीं, कल एक बार घूमकर कलकत्ता देख आना। तब निश्चय का परित्याग करके यदि तुम्हें अनिश्चित ही अच्छा लगे तो चली जाना, मैं रोकूँगा नहीं।'

मालती कुछ बोली नहीं। सुरेन्द्र बाबू भी कुछ देर तक मौन रहे। बाद को पहले की अपेक्षा कुछ खिन्न भाव से कहने लगे—'जितना तुमने नहीं सोचा, उतना मैंने सोच लिया है। तुम ब्राह्मण की बेटी हो। नीच वृत्ति कर न सकोगी। एक सभ्य और प्रतिष्ठित व्यक्ति की बेटी होने के कारण किसी सभ्य परिवार मे यदि न प्रवेश कर पाओगी तो रह न सकोगी। ऐसी अवस्था में किसी सहायक के बिना इतने बड़े नगर में तुम अपने लिए कैसे उपयुक्त स्थान ढूंढ लोगी, यह बात मेरी समझ में आती नहीं।'

कुछ देर चुप रहने के बाद सुरेन्द्र बाबू ने फिर कहा—'जरा यह भी सोचो, क्या तुम इस अवस्था में अपनी मर्यादा की रक्षा करते हुए अपना जीवन व्यतीत कर सकोगी? मुझे सन्देह है कि तुम कहीं संकट में न पड़ जाओ।'

मुँह से कोई बात न निकालकर मालती रोती रही। इन सभी विषयों पर उसने विचार किया था। किन्तु वह करती क्या, बिल्कुल निरुपाय थी। सुरेन्द्र बाबू ने पहले भी मालती को रोते देखा था। किन्तु उसका इस बार का रोना और ही ढंग का था। उन्होने पूछा—'तो क्या जाने का ही पक्का रहा?'

आँखें पोंछकर मालती ने सिर हिलाया। वह बोली—'हाँ।'

नारायणपुर के जमींदार श्रीयुत सुरेन्द्र बाबू के सम्बन्ध में बहुतों की धारणा यही थी कि विवेक की मात्रा का इनमे सर्वथा अभाव है। परन्तु वास्तव में बात ऐसी नहीं थी। जो लोग उन्हें ऐसा समझा करते थे, उन सब की अपेक्षा सम्भवतः वे सौ गुना अधिक समझदार थे। परन्तु कभी-कभी वे दुर्बल स्वभाव के आदमी का-सा काम कर बैठते थे, इससे कोई उन्हें आसानी से नहीं समझ पाता था। मालती के मन की बात उन्होंने परख ली। इससे वे मन-ही-मन जरा-सा हँसे। बाद को मालती जब कुछ शान्त हुई, तब बोले—'मालती, तुम्हे रुपये की बहुत जरूरत है न?'

मालती की आँखों में फिर आंसू भर आये—इतनी जरूरत शायद संसार में किसी को नहीं है।

मालती ने रुलाई को रोक लड़खड़ाती हुई आवाज से कहा—'बड़ी

आवश्यकता है।'

सुरेन्द्र बाबू हँसे। अब उन्हें जानने को कुछ बाकी नहीं था। दूसरे का दुःख देखकर उन्हें हँसी आई। हँसी आने का कारण भी था। कुसंगति के दोष से यह बात वह भूल ही गये थे कि इन लोगों के रोने का भी युक्ति संगत कारण हो सकता है। हँसी का कुछ भाव मुँह से निकल गया और कुछ को उन्होंने दबा लिया और कहा—'तब तुम रोती क्यों हो? भगवान ने तुम्हें रूप दिया है; अवस्था भी तुम्हारी युवा है, तिस पर तुम जा रही हो कलकत्ता! अब तुम्हें रुपये-पैसे के लिए चिन्ता न करनी होगी। तुम्हें तो ऐसा मालूम पड़ेगा, मानो कलकत्ता में रुपया पैसा चारों तरफ फेंका पड़ा है।'

मालती को ऐसा मालूम हुआ, मानो वज्र की चोट के कारण मेरा सिर फटकर जमीन पर गिर पड़ा है। इस समय अगर मैं कूदकर पानी में गिर पड़ूँ तो भी विशेष हानि न होगी। मालती इस तरह का कोई एक काम करने जा रही थी, इतने में एकाएक कुछ उसे बाधा का अनुभव हुआ। उसे यह अनुभव हुआ मानो वह बेहोश होकर किसी आदमी की गोद में गिर पड़ी हो परन्तु इस गोद में मानो आग जल रही है। बड़ी कड़ी है वह, बहुत गरम है। अणुमात्र भी मांस नहीं है उसमें लेशमात्र भी कोमलता नहीं है। बिल्कुल पत्थर है वह। कुल अस्थि-ही-अस्थि हैं। बेहोशी में होने पर भी मालती काँप उठी। जिस वक्त उसे चेतना आई, उस वक्त उसे यह नहीं मालूम हुआ कि वह किसकी गोद में लेटी हुई है। आँख खोलकर उसने देखा कि वह अपनी शय्या पर लेटी हुई है और पास ही बैठे हुए सुरेन्द्र बाबू उसके मुँह की ओर देख रहे हैं। शर्म के कारण उसका चेहरा लाल हो उठा। दोनों हाथों से अपना मुँह ढककर उसने करवट बदल ली।

कुछ देर के बाद सुरेन्द्र बाबू ने कहा—मालती, कल तड़के मैं बजरा खोल दूँगा। परन्तु मैं तुम्हें छोड़ूँगा नहीं। तुम्हें मेरे साथ जाना होगा।' निःश्वास बन्द करके मालती सुनने लगी। सुरेन्द्र बाबू भी कहते ही गये—जिस अभिप्राय से तुम कलकत्ता जाना चाहती हो वह अभिप्राय हो

जाएगा। यह वृत्ति संभवतः पहले कभी तुमने की नहीं है, इस वक्त भी तुम्हारे किए न होगी। तुम्हें जितने धन की आवश्यकता हो, जितने आनन्द की कामना हो, वह सब मुझसे ही तुम प्राप्त कर सकती हो।

मालती की रुकी हुई साँसों के साथ आँखों में आँसू निकल पड़े। सुरेन्द्र बाबू यह ताड़ गये। उन्होंने उसे बड़े प्रेम से अपनी गोद में खींच लिया और कहा—'जरा सोचो तो, तुम्हे यहाँ छोड़कर अगर मैं चला जाऊँगा तो क्या तुम जीवित रह सकोगी या मैं ही शान्त मन से लौट सकूँगा।' सुरेन्द्र बाबू ने उसे और हृदय के पास खींच लिया। वे स्नेहपूर्वक उसके आँसू पोछने लगे और छि: ! छि: ! लज्जा के कारण संकुचित हो गये उसके होठो को चूमकर उन्होंने कहा—'चलोगी न ?'

मालती का सारा शरीर रोमांचित हो उठा उसके अंग-प्रत्यंग कांप उठे। अब वह पहले की सी नही रही। अब वह ललना नही रही, वह मालती भी नहीं है, अब तो वह जो है वही है। वह सुरेन्द्र बाबू की चिर-संगिनी है, आजन्म की प्रणयिनी है। वह सीता है, वह सावित्री है, वह दमयन्ती है। सीता-सावित्री का नाम क्यों लें ? वह तो राधा है, वह चन्द्रावती है। इसमे ही उसे क्या हानि है ? सुख-शाँति और स्वर्ग की गोद में आश्रय मिल जाने पर मान-अपमान का क्या प्रश्न रह जाता है ? मालती निस्पन्द, अचेतन, सोने की मूर्ति के समान सुरेन्द्रनाथ की गोद में पड़ी रही। वह गोद अब ऐसी नही रही कि उसमें अस्थि ही अस्थि हों, अब वह न पत्थर के समान कठोर थी और न अंगार के समान उत्तप्त थी। अब वह शान्त थी, स्नेहमयी थी, कोमल थी, मधुमय थी। मालती ने यह अनुभव किया कि इतने दिनों तक वह शापग्रस्त थी, अब स्वर्ग में आ गई है। उसका जो धन छीन लिया गया था, इतने दिनों के बाद उसे फिर मिला है।

अब मालती के बन्द ओठ फिर खुल उठे थे। सुरेन्द्र बाबू उस ओठ का बार-बार चुम्बन कर रहे थे और पाप के प्रथम सोपान पर अवतरण करके मालती अपने आपको भूल गई, वह स्वर्ग के सुख का उपभोग करने लगी। उस समय सूर्य अस्त हो रहे थे। खिड़की की साँस से यह पाप-कर्म वे देखते गये। अपराह्न के सूर्य की रक्तवर्ण किरणों के स्पर्श से मालती का

मुख-मण्डल सुरेन्द्र बाबू की दृष्टि मे हजार गुणा अधिक सुन्दर प्रतीत हो रहा था। उन्होने बड़े आवेग से, बड़ी तृष्णा से, उस मुख का बार-बार चुम्बन करके कहा—'क्यों मालती, चलोगी न तुम मेरे साथ ?'

'चलूंगी।'

सुरेन्द्र नाथ उन्मत्त हो उठे। उन्होंने कहा—'तो चलो इसी समय चलें।

'किन्तु दीदी !'

'दीदी कौन ?'

'वे ही, तुम्हारी स्त्री।'

सुरेन्द्र नाथ मानो एकाएक सोते से जाग पड़े। कांपते हुए उन्होंने कहा—'मेरी स्त्री ! उसकी मृत्यु हुए तो बहुत दिन हो गये।'

'जयावती !'

सुरेन्द्रनाथ ने एक रूखी हँसी हँसकर कहा—'जयावती मेरी स्त्री नहीं है। उसके साथ मैंने कभी विवाह नही किया।'

'तो क्या ?'

'कुछ नहीं—कुछ नही। तुम मेरी सब कुछ हो, वह कोई नही है।'

अब मालती ने सुरेन्द्रनाथ के गले में अपनी बाँहे डाल दी। उसने उसकी गोद में मुंह छिपा लिया। छिः ! छिः मुक्त कण्ठ से वह बोली—'मैं तुम्हारी चिरकाल की दासी हूँ कभी मेरा परित्याग न करना।'

'नही, कभी नही करूँगा।'

'तो मुझे ले चलो।'

'चलो।'

'आज।'

'इसी समय।'

इतने में धरो, पकड़ो, दौडो, डूबा-डूबा ! की आवाज हजारों कण्ठ से निकल कर तुमुल कोलाहल के रूप मे परिणत हो गई। सुरेन्द्रनाथ दौड़ते हुए कमरे से निकल आये। उनके पीछे-पीछे मालती भी आई। सुरेन्द्रनाथ ने देखा कि इस पार और उस पार चारो ओर मल्लाह और कुली-मजदूर दौड़-दौड़ कर इकट्ठे हो रहे हैं और व्याकुल भाव से चिल्ला

रहे हैं। साथ ही कुछ दूर पर बीच गंगा में एक डोंगी स्टीमर से टकरा जाने के कारण लगातार पानी में डूबती जा रही है।

सुरेन्द्रनाथ ने पल भर में समझ लिया कि क्या घटना हुई है। वे चिल्ला उठे—'उसी में मेरी जया है।' साथ-ही-साथ वे पानी मे कूदने ही को थे कि मालती ने उन्हें पकड़ लिया। पागलों की तरह छटपटाते हुए सुरेन्द्रनाथ फिर चिल्ला उठे—'पकड़ो मत मुझे, पकडो मत। मेरी जया डूबी जा रही है।'

इतने में वह छोटी सी नाव उस बड़े-से स्टीमर के नीचे धीरे-धीरे बैठ गई। सुरेन्द्रनाथ मांझी-मल्लाह तथा नौकरों आदि के हाथों पर बेहोश होकर गिर पड़े।

५

'जया!' चेतना होने पर पहले आँख खोलकर सुरेन्द्रनाथ ने दुखी भाव से पुकारा—'जया!' पास ही बैठी हुई मालती उनकी सुश्रुषा कर रही थी, साथ ही आँखें भी पोंछती जाती थी। सुरेन्द्रनाथ ने जिस भाव से यह बात अपने मुँह से निकाली थी उसके कारण वह और भी आँखें पोंछने लगी। परन्तु उन्होने यह देखा नही। केवल उसकी तरफ उन्होंने एक बार निगाह दौड़ाई थी, फिर आँखें बन्द कर ली थी।

बड़ी देर तक इस तरह रहने के बाद एक लम्बी साँस लेकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'क्या जया की कोई खबर नही मिली?'

पास ही एक पुराना नौकर बैठा हुआ था। वह दुखी भाव से बोला—'नही।'

'नहीं मिली—तो शायद अब वह बची नही है।'

कुछ सोच-विचार करने के बाद नौकर ने कहा—'जान तो ऐसा ही पड़ता है।'

सुरेन्द्रनाथ ने पूछा—'कितनी रात बीती होगी?'

'लगभग दस बजे होंगे।'

'दस बजे होंगे! तो भी कोई खबर नहीं मिली?'

नौकर ने उत्तर नहीं दिया।

बहुत अधिक हताश होकर सुरेन्द्र बाबू ने अपने कपाल पर कराघात किया। वे बोले—'तुम सभी लोग जाओ, सारे नगर में तथा गंगा के किनारे-किनारे सब जगह उसकी खोज करो।'

नौकर ने सोचा, कोई बड़ी बुरी आज्ञा नहीं है। मुँह से उसने कह दिया। 'जो आज्ञा।' बाद को वहाँ से वह उठ आया और अपनी निर्दिष्ट चारपाई पर लेट गया।

कमरे में मालती के अलावा और कोई नहीं था। परन्तु सुरेन्द्रनाथ ने उससे कोई बात नहीं कही। वे चुपचाप अविराम आँसू बहाते रहे। इसी तरह समय बीतने लगा। कमरे में जो घड़ी लगी हुई थी, वह स्वेच्छानुसार ग्यारह के बाद बारह, उसके बाद एक दो तीन चार और बाद को जो कुछ पूँजी-पत्ता था, सब बजाती गई किन्तु इसकी ओर किसी ने एक बार भी निगाह नहीं डाली, ऐसा नहीं मालूम पड रहा था। सुरेन्द्रनाथ कभी इस रुख तो कभी उस रुख लेटते। उन्हें किसी तरह भी चैन न मिलता। पास ही बैठकर मालती उनकी यन्त्रणा को देखने लगी। साथ-ही-साथ वह आँखें भी पोंछती जाती थी। उसका भी चित्त बहुत दुखी हुआ। उसे लज्जा आई। साथ-ही-साथ अपने आप पर बहुत घृणा भी हुई। वह बहुत ही गम्भीर भाव से वर्तमान, अतीत और भविष्य की बातों पर सोच-विचार कर रही थी।

एक तो कलकत्ता की गंगा सारी रात में एक पल के लिए भी विश्राम नहीं ग्रहण करती, दूसरे अब चार बज चुके थे—चारों तरफ से थोड़ा-बहुत शोर होने लगा था।

सुरेन्द्रनाथ अचानक उठकर बैठ गये। मालती की तरफ देखने लगे। बाद को उन्होंने कहा—'बेकार सारी रात जागने से कोई फायदा न होगा अब तुम सो जाओ।'

मालती उठी जा रही थी। उसे फिर पुकार कर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'बैठो, जाओ नहीं। तुमसे मुझे कुछ कहना है।'

मालती दो कदम आगे गई थी। लौटकर वह फिर पहले के ही स्थान पर आकर बैठ गई।

सुरेन्द्रबाबू ने एक बार आँख मली, और सोच लिया कि मुझे क्या कहना है। तब गम्भीर भाव से बोले—'मालती, किसके पाप से ऐसा हुआ?'

मालती के सिर पर मानो आकाश टूट पड़ा। यह बात वह स्वयं अपने आपसे भी कई बार पूछ चुकी थी। उत्तर भी उसे इस प्रश्न का एक तरह से मिल चुका था। परन्तु उस उत्तर को प्रकट कर देने के लिए जब उसने मुँह खोलने का प्रयत्न किया तब असफल होना पड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि मुँह नीचा करके उसे रह जाना पड़ा।

सुरेन्द्र बाबू ने भी कुछ कहने का विचार किया था वह कह नहीं सके। बोले— 'अच्छा, इस समय तुम जाओ, वे सब बातें बाद को होंगी।'

सुरेन्द्र नाथ के पास से आकर मालती अपने कमरे में लेट रही। परन्तु क्या उसे नींद आ सकी? नहीं, शय्या पर पड़ी रहकर छटपटाते हुए वह बाकी रात बिताने लगी। कई बार वह बैठी और कई बार लेटी। कितनी ही देवियों तथा देवताओं की याद करके उसने उनकी प्रार्थना की। बहुत-सी बातें उसके मन में आईं। बाद को प्रातःकाल निद्रा की झोंक में वह तरह-तरह के स्वप्न देखने लगी। कभी तो उसने यह देखा कि जयावती आँखें लाल किये हुए खड़ी है, कभी देखा सदानन्द अपनी धुन में आनन्द के साथ गा रहा है, कभी देखा माता शुभदा दुखी होकर रो रही हैं। सब के अन्त मे उसने यह देखा कि माधव आकर सिरहाने खड़ा है, किसी अज्ञात देश में जाने के लिए वह बार-बार उत्तेजित कर रहा है। मालती की वहाँ जाने की इच्छा नहीं है, लेकिन वह किसी प्रकार छोड़ता नहीं।

एकाएक मालती की निद्रा टूटी। निगाह दौड़ाई तो उसने देखा कि कहीं कोई भी नहीं है। केवल प्रातःकाल के सूर्य की किरणें खुली हुई खिड़की की राह से आकर उसके मुख पर पड़ी रही है। चारपाई से उठकर मालती बाहर आई।

उस दिन सुबह से लेकर शाम तक मालती सुरेन्द्रनाथ को देख नहीं पाई। सबेरा होने से कुछ पहले ही बजरा वे छोड़कर चले गये थे। दूसरे दिन भी वे नहीं आये। उसके बाद वाले दिन शाम होने से पहले ही आकर

उन्होंने अपने कमरे मे प्रवेश किया और द्वार बन्द कर लिया। इस प्रकार वह दिन भी वैसे ही बीत गया। दूसरे दिन सुरेन्द्रनाथ ने मालती को बुलवाया। कमरे मे जाकर मुँह नीचा किये हुए मालती एक ओर खड़ी रही।

एक कागज लेकर सुरेन्द्र बाबू कुछ लिख रहे थे। शायद वे किसी के लिए पत्र लिख रहे थे। मालती ने आँख बचाकर डरते-डरते देखा कि उनका मुख बहुत ही मुरझाया हुआ है, आँखें लाल हो गई हैं, सिर के बाल बहुत ही रूखे होकर खड़े हैं, कपड़ों मे इस वक्त भी जगह-जगह पर कीचड लगा हुआ है। यह देखकर मालती अपने आप ही काँप उठी। उसे जान पडा, मानो मैंने बहुत बडा अपराध कर डाला है, इसलिए उस पर विचार करने के लिए न्यायालय में लाई गई हूँ।

सुरेन्द्र बाबू आधा ही पत्र लिख पाये थे। उसी अवस्था में उसे एक बगल रख कर उन्होंने मुँह ऊपर उठाया और कहा—'क्या अब तुम्हारा स्वास्थ्य काफी अच्छा हो गया है?'

नीचे की ही तरफ देखते-देखते सिर हिलाकर मालती ने सूचित किया—'हो गया है।'

'आज मैं बजरा खोल दूँगा। उस पार कलकत्ता है। तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ तुम जा सकती हो।'

यह बात सुनते ही मालती की आँखों मे आँसू आ गये। वह कुछ बोली नहीं।

बगल में रखखा हुआ कागज हाथ में लेकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'यहाँ मेरे एक मित्र रहते हैं। यह पत्र लेकर तुम जाओ और पता लगाकर उनसे मिलो। वे तुम्हारे लिए कोई-न-कोई प्रबन्ध कर देंगे।'

टप से मालती के नेत्र से एक बूँद जल नीचे बिछी दरी पर गिर पड़ा।

शायद सुरेन्द्र बाबू ने उसे देख लिया। उन्होंने कहा—'तुम्हारे पास रुपया-पैसा तो कुछ होगा नहीं?'

सिर हिलाकर मालती ने कहा—'नहीं।'

'यह बात मैं पहले से ही जानता था। यह लो।' कहकर तकिये के नीचे से उन्होंने एक मनीबेग निकाला और मालती के पैरों के पास उसे

फेंककर कहा—'इसमें जो कुछ है, उसके द्वारा और कोई इन्तजाम न हो सकने पर भी कम-से-कम एक वर्ष तक निर्वाह कर सकती हो। तब तक भगवान् की कृपा से कोई-न-कोई प्रबन्ध हो ही जाएगा।'

और एक बूंद जल आकर दरी पर पड़ा।

'उस दिन मैं उन्मत्त था, इसलिए पूछ बैठा था कि किसके पाप से ऐसा हुआ है। लेकिन अब मुझे ज्ञान हुआ है। मैं समझ रहा हूँ कि मेरे ही अपराध से यह सब हुआ है। तुम पूर्ण रूप से निरपराध हो। अपनी जया को मैंने ही मार डाला है।'

सिर पर पसीने की बूँदें इकट्ठी हो गई थी, उन्हें सुरेन्द्रनाथ ने हाथ से पोंछ डाला। बाद को वे बोले—'बहुत हो गया। अब मैं पाप न करूँगा। कुछ दिनों तक अच्छे मार्ग पर रहकर देखता हूँ कि मुझे सुख मिलता है या नहीं।'

मालती खड़ी रही। सुरेन्द्रनाथ पत्र समाप्त करने लगे। जब वह समाप्त हो गया उसे मोडकर उन्होंने लिफाफे मे भर दिया और पता लिख कर मालती के पैर के पास फेंक दिया। उन्होंने कहा—'इसे ले लो, श्याम बाजार में जाकर पता लगा लेना। शायद इससे तुम्हारा उपकार हो जाएगा।'

काँपते हुए हाथ से मालती ने पत्र उठा लिया।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'रुपये ले लो।'

मालती ने रुपये भी उठा लिये और दरवाजे की ओर एक कदम बढ़ी।

सुरेन्द्र बाबू का दिल न जाने कैसा हो उठा। उन्होने कहा—'धर्म पथ पर रहना।'

मालती ने दरवाज की तरफ एक कदम और बढ़ाया। अब सुरेन्द्र बाबू का गला काँप उठा—'मालती, उस दिन की बात भूल जाना।'

मालती ने दरवाजे को पकड़ कर खींचा। आधा दरवाजा खुल गया। अब सुरेन्द्रनाथ का गला काँप उठा—'असमय में, किसी प्रकार का संकट आने पर मुझे याद करना।'

मालती बाहर आ गई। साथ-ही-साथ उनकी आँखें भर आईं। उन्होंने

पुकारा—'मालती !'

मालती वही खडी हो गई।

सुरेन्द्र बाबू ने फिर पुकारा—'मालती !'

अब भीतर जाकर मालती द्वार के सहारे खडी हो गई।

आँखें पोछकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'जया का शोक मैं अब भी भूला नही हूँ।'

कपाट छोडकर मालती वही पर बैठ गई। उसके पैर काँप रहे थे।

'मालती, क्या लेकर मैं रहूँगा संसार में ?' बच्चों की तरह सुरेन्द्रनाथ रो पड़े—'तुम जब मेरा परित्याग कर दोगी, तब मैं जीवित न रह सकूँगा।'

इतना कहकर वे नीचे गलीचे पर लेट गये।

मालती आकर सुरेन्द्र बाबू के पास बैठ गई। उनका सिर उठाकर उसने अपनी गोद मे ले लिया और उनकी आँखें पोंछते-पोछते वह बोली—'मैं नही जाऊँगी।'

वे दोनों ही बडी देर तक रोते रहे। मालती ने फिर सुरेन्द्र बाबू के आँसू पोंछ दिये। सुरेन्द्र बाबू की आँखें बन्द थी। उसी प्रकार भग्न स्वर में बोले—'उस दिन तुमने क्या कहा था, याद है ?'

'क्या कहा था ?'

'चिरदासी।'

'हाँ, मैं वही हूँ।'

सुरेन्द्रनाथ ने उच्च स्वर से पुकारा—'हरिचरण !'

छत के ऊपर से हरिचरण मल्लाह बोला—'हुजूर।'

'बजरा इसी समय खोल दो।'

'इसी समय ?'

'हाँ, इसी समय।'

६

बजरा जब तक आँखो से दूर नही हो गया तब तक गीत बन्द करके सदानन्द उसकी ओर देखता रहा। बाद को घर आकर वह लेट रहा।

आज उसका मन अच्छा नही था। नींद भी उसे अच्छी तरह नहीं आ सकी। प्रातःकाल शुभदा के पास आकर उसने कहा—'अगर मैं यही भोजन कर लिया करूँ तो क्या ठीक न होगा?'

सूखे हुए मुख से शुभदा ने कहा—'ठीक क्यों न होगा?'

'अब मेरा ऐसा ही विचार है। मेरे कोई नही, दोनो समय यहीं आकर थोड़ा-सा खा लिया करूँगा।'

कुछ देर सोच-विचार करने के बाद शुभदा बोली—'अच्छी बात तो है।'

'बुआ जी की ससुराल में उनकी थोडी-सी जगह-जमीन वगैरह है। वह सब मैंने ही पाई है। दो ही एक दिन में वहाँ जाकर मुझे वह सब देख लेना होगा। मुझे समझना है कि जगह-जमीन सब की व्यवस्था कैसे की जाय।'

शुभदा ने कहा—'वह तो आवश्यक ही है। उस सबकी देखभाल न करोगे तो कैसे काम चलेगा।'

'मैं यह भी सोच रहा हूँ कि अपने धान भरे कोठिले यही रख दूँ। नही तो उसमें से बहुत-सा धान चुराया जा सकता है।'

रहस्य की बात शुभदा की समझ में आ गई। वह बोली—'इतने दिनो तक तो किसी ने चुराया नहीं तुम्हारा धान?'

'यह तो ठीक है। लेकिन अब तो उसके चुराये जाने की आशंका है।'

शुभदा चुप रह गई।

इसके बाद दो-तीन दिनों के अन्दर ही सदानन्द के धान के कोठिले, चने के कूँड़े, आलू के झाबे, नारियल के ढेर और गुड़ का घड़ा वगैरह सभी कुछ एक-एक करके हट आया और मुकर्जी के घर में उस सबको स्थान मिल गया।

यह सब देखकर शुभदा बोली—'सदानन्द, लोग क्या कहेंगे?'

सदानन्द ने हँसकर जवाब दिया—'चीजें तो मेरी हैं, लोगों की हैं नही। मैं यही खाता हूँ, यही रहता हूँ, यहीं मेरा सामान भी रहेगा।'

सचमुच ही पास-पड़ोस के दस आदमी दस तरह की बातें कहने लगे। कोई कहता—'हाराण की बहू ने सदानन्द पागल पर जादू कर दिया है।'

कोई कहता—'सदानन्द बिलकुल पागल ही हो गया है और कोई यह भी कह डालते थे कि छलना के साथ सदानन्द की शादी हो रही है। ये सब बातें सदानन्द के कानों में पड़तीं तब वह मन-ही-मन हँसा करता। जब कभी कोई उसके सामने ही उन्हें छोड़ देता तब वह उसे एक गाना सुना देता। किसी से हँसी करके वह कह बैठता कि जब मैं मरने लगूँगा तब दो बीघा जमीन तुम्हारे नाम लिख जाऊँगा। किसी-किसी के सामने तो वह गम्भीर हो उठता और कहता—पागल आदमी पागलपन तो करेगा ही। उसके लिए तुम्हें चिन्तित होने की कौन-सी बात है? इस प्रकार क्रमशः लोगों के मुँह बन्द होने लगे, लेकिन जो लोग द्वेष के वश में थे वे मन-ही-मन जलने लगे। भवतारण गंगोपाध्याय महोदय के कानों तक जब यह बात पहुँची तब उन्होंने सदानन्द को बुलाकर उसे विशेष रूप से उपदेश दिया।

गंगोपाध्याय महोदय के उपयोगी उपदेश सुनने के बाद सदानन्द ने दुःखित भाव से कहा—'जो होना था वह तो हो गया। अब मैं बुआ जी की ससुराल जा रहा हूँ, वहाँ से लौटकर आने पर धान के कोठिले और सामान आपके यहाँ रख जाऊँगा।'

बहुत ही नाराज होकर गंगोपाध्याय महोदय ने कहा—'देखो सदानन्द, तुम्हारे पिता भी मेरे कहे अनुसार चला करते थे।'

'मैं भी तो आपकी किसी प्रकार की उपेक्षा नहीं करता।'

'तो इस तरह की बात कही क्यों?'

कुछ सहम कर सदानन्द ने कहा—'मेरी बुद्धि सदा ठिकाने पर नहीं रहा करती।'

गंगोपाध्याय महोदय और भी क्रोधित हो उठे। बोले—'तुम विनाश की तरफ बढ़े जा रहे हो।'

सदानन्द ने मुस्करा दिया। वह बोला—'आप लोग यदि रक्षा के लिए थोड़ा-सा प्रयत्न करते तो मैं तबाह ही हो जाता।'

'तुम मेरे सामने से दूर हो जाओ।'

'जो आज्ञा।' कहकर सदानन्द बाहर चला आया और उसने खूब जी भरकर हँस लिया। फिर वह ऊँचे गले से गाना गाने लगा। पास से ही होकर सिर पर परवल का बोझा लादे हुए कंकालीचरण

बाजार जा रहा था। सदानन्द के मुखमंडल पर हँसी देखकर तथा उसका मस्ती से भरा हुआ गाना सुनकर उसने कहा—'कहो भाई साहब, कौन-सी ऐसी आनन्ददायक घटना हो गई है जिसके कारण इतने प्रसन्न हो रहे हो?'

सदानन्द हँसते-हँसते बोला—'गाँगुली महोदय के यहाँ आज निमन्त्रण था, खूब पेट भर कर खाना खाया है।'

'ओह, यह बात है!'

अब सदानन्द ने कंकालीचरण से यह मालूम कर लिया कि आजकल परवल का भाव क्या है। बाद को एक बार हँसकर अभी-अभी जो गाना उसने बन्द किया था उसका स्वर गले में फिर ठिकाने से जमा लिया और झूमते-झूमते अपना रास्ता लिया। कंकालीचरण भी निश्चित स्थान की ओर बढ़ता गया।

यहाँ एक बात कह देनी है। किसी कवि ने कहा है कि मन में ही स्वर्ग है और मन मे ही नरक है। इनका कोई वैसा सासारिक अस्तित्व नही है। यह बात पूर्ण रूप से चाहे भले ही सत्य न हो, किन्तु इसके आंशिक रूप से सत्य होने मे तो सन्देह का लेश भी नही है। कारण, हाराणचन्द्र के पार्थिव सुख की जो अन्तिम सीमा थी, शुभदा उसका उपभोग उस रूप में नही कर पाती थी। हाराणचन्द्र दोनों समय खूब पेट भरकर भोजन किया करते थे, माँगते ही दो-चार आने पैसे स्त्री से उधार मिल जाया करते थे, उन पैसों को लौटाने के लिए उन्हें तनिक भी चिन्ता तक नही करनी पड़ती थी। अब वे बाजार के भीतर सिर ऊँचा करके चल सकते थे। वे सोचा करते कि किसी साले का एक पैसा भी तो मेरे जिम्मे उधार बाकी है नही, अब दबने की कौन-सी बात है? अड्डे वालों ने भी उनका पहले का पद सम्मानपूर्वक लौटा दिया। अब और चाहिए ही क्या था? उनको थोडी-सी आवश्यकता अभी निवृत्त होने की अवश्य थी। हाराणचन्द्र सोचा करते कि सदानन्द में जरा-सा और पागलपन आया नही कि उसकी भी निवृत्ति का साधन तैयार कर लूंगा। उस दशा में तो अफीम की दूकान मैं स्वयं खरीद लूंगा और वह जो नीच जाति की छोकडी कात्यायनी है, उस साली का भी अभिमान चूर-चूर कर

दूंगा। उसका साल भर का खाने-पीने का खर्च पेशगी उसके सामने फेंक-कर कहूंगा, तू साली नीच जाति की होकर मेरी अवहेलना करने चली है! पुरुष के भाग्य और स्त्री के चरित्र को जब देवता तक नहीं जानते तब तेरी क्या हस्ती है? और भगवान् नन्दी उसके घर के सामने तक अड्डा कायम करके न छोड़ा तब मेरा नाम हाराणचन्द्र नहीं।

किन्तु शुभदा? उसे क्या एक बात की चिन्ता थी? भगवान् जानते हैं, स्वामी का सुख उसने एक दिन के लिए भी नहीं प्राप्त किया था। कम-से-कम शुभदा को तो नहीं याद है। स्वामी के मुख में भोजन का ग्रास डाल देने में ही उसे कितनी तृप्ति होती थी, कितना सुख मिलता था, इस बात की अनुभूति वह स्वयं ही नहीं कर पाती थी। आनन्द के अतिरेक के कारण नेत्रों के कोर में पानी आ जाया करता था, लेकिन उसे देखने वाला कौन था, देखने के लिए एक आदमी था, समझने के लिए एक आदमी था लेकिन वह पहले ही समाप्त हो चुका था। केवल वही अगर होता तो शुभदा इस सुख में ही सांसारिक कहानी समाप्त कर देने में समर्थ हो पाती। लेकिन छलना तो दिन-दिन बड़ी होती जा रही थी, उससे उद्धार किस तरह हो? जो मर गया उसे सारे झगड़े-झञ्झट से छुटकारा मिल गया। परन्तु माधव के मन में क्या है, शुभदा उस रहस्य को जानने में किसी प्रकार भी नहीं समर्थ हो पाई। आजकल चिकित्सा के लिए बहुत सुविधा हो गई थी। यथासाध्य चिकित्सा भी हो रही थी। किन्तु उससे कुछ फल हो रहा है, यह किसी भी प्रकार नहीं मालूम हो पाता था। शुभदा ये सब बातें सोच-सोचकर अपना सिर पीटा करती, दुःखी होकर एकान्त में रोया करती और उसके पास जाने की कामना करती है। बाद को वह पानी भर लाती, भोजन बनाती, सबको खिलाती-पहनाती। इसी तरह से दिन बीतते जा रहे थे।

एक दिन दोपहर में भोजन करते समय शुभदा की तरफ देखते हुए सदानन्द ने कहा—'छलना अब बड़ी हो गई है।'

शुभदा ने मलिन मुख से कहा—'हाँ।'

'अब इसे इस तरह रखना ठीक नहीं है। अपने को भी नहीं अच्छा मालूम पड़ता।'

शुभदा ने कहा—'माँ दुर्गा ही जानती हैं।'

सदानन्द मुस्करा उठा। वह बोला—'माँ दुर्गा तो आकर शादी का प्रबन्ध कर न जायेंगी।'

शुभदा चुप रही।

'हरमोहन बाबू के लड़के शारदा के साथ यदि इसकी शादी कर दी जाय तो कैसा हो?'

शुभदा अच्छी तरह उसका अभिप्राय नहीं समझ सकी। वह बोली—'शारदा के साथ?'

'हाँ।'

'तो क्या यह सम्भव है?'

'असम्भव ही क्यों है?'

'पता नहीं।' यह बात शुभदा ने बहुत ही निराश भाव से मुंह से निकाली थी।

शुभदा के मन की बात पागल सदानन्द ने समझ ली। इससे मुँह फेरकर उसने तनिक हँस लिया। बाद को वह बोला—'इस बारे में मैंने एक दिन शारदा से बातचीत की थी। वह अस्वीकार नहीं करेगा।'

शुभदा के मुख पर आग्रह का चिह्न उदित हो आया। लेकिन तुरन्त ही वह फिर जहाँ-का-तहाँ हो गया। वह बोली—'किन्तु शारदा के पिता? क्या वे भी स्वीकार कर लेंगे इसे?'

'स्वीकार क्यों न करेंगे?'

क्यों न स्वीकार करेंगे, यह बात शुभदा समझती थी। पुत्र की इच्छा होने पर भी पिता की इच्छा न होगी, यह बात भी उसे मालूम थी किन्तु खोलकर इस बात को वह कह नहीं सकती थी। शुभदा के मन में एक बार आया, वह पूछे कि उसके पिता से बातें करने के लिए कौन जायगा? किन्तु यह बात भी वह मुंह से न निकाल सकी। वह केवल मौन भाव से कातरतापूर्ण-दृष्टि से उसके मुँह की ओर देखती रह गई।

वह मौन भाषा भी पागल ने समझ ली। वह बोला—'हम लोगों को ही किसी-न-किसी उपाय से उसके पिता की स्वीकृति लेनी होगी, क्योंकि शादी तो करनी ही पड़ेगी।'

डरते-डरते आशा और निराशा के बीच गोते खाती हुई शुभदा

अस्पष्ट स्वर में बोली—'लेकिन, क्या उनकी स्वीकृति मिल जायगी?'

'अवश्य मिल जायगी।'

'कैसे मालूम हुआ तुम्हे ?'

पागल तनिक और मुस्कराया। वह बोला—'यह मालूम नहीं है मुझे। लेकिन आप चिन्ता न कीजिए।'

वृद्ध हरमोहन की स्वीकृति लेने का मुख्य उपाय क्या है, यह सदानन्द को मालूम था। उपाय का किस प्रकार अवलम्बन किया जा सकेगा, यह भी उसने निश्चय कर लिया था।

लेकिन अब शुभदा से रहा न गया। तेजी से पैर बढाती हुई वह दूध लेने के लिए घर में गई। दूध का कटोरा वह हाथ में लिए हुए थी। असावधानी के कारण उसमें आँसू की एक बूँद गिर पड़ी। संकुचित भाव से आकर वह बोली—'सदानन्द, बैठो, मैं उस कमरे से दूध बदल कर आती हूँ।'

उस कमरे में जाकर दूध की कढाही पर हाथ रख कर शुभदा ने जरा देर तक रो लिया। सावधान होकर उसने और दो-चार बूँदें भूमि पर गिराईं। बाद को आँखें पोंछकर वह दूध उडेलने लगी। शुभदा रोई अवश्य लेकिन उसकी आँखों से हृदय को भेदने वाले रक्त के बिन्दु नहीं निकले। वे थे आनन्द के आँसू जो एक अनहोनी आनन्ददायक बात की सम्भावना के कारण उमड़ आये थे। एक बूँद जल ललना के शोक के कारण भी गिरा और एक बूँद स्वामी की वेदना के कारण।

भोजन करके सदानन्द मैदान की ओर चला। वहाँ उसके खेत थे, मजदूर उनमे काम कर रहे थे, पशु आनन्दपूर्वक चर रहे थे। वहाँ कुछ देर तक तो वह खेतों की मेडों पर टहलता रहा, बाद को एक पीपल की जड़ पर आकर बैठ गया। वहाँ उसने दो-चार बार कालीजी का नाम लिया, दो-चार चिलम-तम्बाकू जलाई, तब हरमोहन बाबू के घर की ओर चल दिया।

सदानन्द जिस समय हरमोहन बाबू की बैठक में पहुँचा, उस समय वे दोपहरी में सोकर उठने और हाथ-मुँह धोने के बाद पान खा रहे थे। चिलम का तवा उस समय तक गरम नहीं हो पाया था। उसमें से थोड़ा-

थोड़ा धुआँ निकल रहा था।

सदानन्द को देखते ही वृद्ध बोल उठे—'क्यों जी बहुत दिनों से मैंने तुम्हें देखा नहीं। कहाँ थे?'

सदानन्द ने कहा—'इधर बहुत दिनों से काशी में थे।'

'यह तो मैंने सुना था। तुम्हारी बुआ जी को काशी-लाभ हो गया है, इस बात का भी समाचार मुझे मिल चुका है। तुम कब आये? आओ बैठो।'

बहुत ही तेजी के साथ पास ही सदानन्द बैठ गया। कोई बात कहने से पहले भूमिका बाँधने का सदानन्द का स्वभाव नहीं था। बेकार की बातें बढ़ाना भी उसे पसन्द नही था। बैठते ही वह बोल उठा—'श्रीमान् के पास मैं शादी का संदेश लेकर आया हूँ।'

हरमोहन ने हँसकर कहा—'किसकी शादी का?'

'आपके पुत्र की शादी का।'

अब वृद्ध गम्भीर हो गये। कारोबारी मनुष्य मतलब की बातें छिड़ने पर हँसी की बातों को कोसों दूर भगा देते है। हरमोहन के लिए पुत्र की शादी की बातचीत एक बहुत बड़े सौदे से कम महत्व नही रखती थी। इतने दिनों तक इस विषय में उन्हे बहुत अधिक दिमाग खपाना पडा था, कितने झमेलों का सामना करना पड़ा था। उनका खयाल था कि इस तरह के लेन-देन सम्बन्धी जटिल विषयों पर बातें करते समय यदि समुचित रूप से तर्क करके बुद्धि का उपयोग न किया जाय तो ठीक-ठीक मीमासा करना संभव नहीं होता। इसके सिवा कोई अपरिपक्व अवस्था का भी आदमी शादी का पैगाम लेकर किसी के पास जा सकता है, यह बात कभी उनके दिमाग मे भी नहीं आ पाई थी। ऐसी दशा मे यह कठिन विषय एक बालक को छेड़ते देखकर वृद्ध कुछ विह्वल हो उठे। कुछ दिन पहले उन्होने सुना था कि आजकल सदानन्द का मस्तिष्क कुछ और विकृत हो उठा है। अब उन्हें उसके पागलपन का एक प्रमाण भी प्राप्त हो गया। इससे बहुत रुखाई के साथ और अधिक-से-अधिक गम्भीर होकर वे बोले—'किसकी शादी? शारदा की?'

'जी हाँ।'

वृद्ध ने अन्यमनस्क भाव से घर के भीतर की ओर अँगुली से इशारा करके कहा—'शायद शारदा उधर है। उसके पास जाओ।'

हरमोहन बाबू का रंग-ढंग देखकर सदानन्द उनका मतलब समझ गया। तनिक हँसकर वह बोला—'शारदा से मेरा मतलब नहीं है। मैं आपके पास ही आया हूँ।'

वृद्ध ने पहले की ही तरह फिर पूछा—'मेरे पास?'

'जी हाँ।'

'क्यों?'

'मैंने कहा न आपसे? आपके पुत्र की शादी के विषय में बातें करने के लिए। क्या शारदा की शादी न करेंगे आप?'

'करूँगा क्यों नहीं? परन्तु उसके विषय में बातें करने की तुम्हें क्या आवश्यकता है?'

'तो क्या मैं बेकार आया हूँ यहाँ पर?'

'तुम्हारा मतलब है मुझसे?'

'जी हाँ।'

'लेकिन शादी के विषय में तुमसे कोई भी बातचीत नहीं की जा सकती।'

सदानन्द ने समझ लिया कि संसार में इस प्रकार के लोगों के सामने मुँह में हँसी का अणुमात्र का चिह्न मौजूद रहने पर किसी तरह मतलब की बात नहीं की जा सकती। मुख आँधी हाँडी के समान न कर सकने पर लेन-देन और रुपये-पैसे के सम्बन्ध की बातें बिन्दु-मात्र भी समझ में आ सकती हैं, यह बात इस सम्प्रदाय के लोग कल्पना तक में नहीं ला सकते। यह सोचकर सदानन्द ने अधिक-से-अधिक गम्भीर होने का प्रयत्न किया। बाद को वह बोला—'खूब की जा सकती है। बाल्यकाल में ही मेरे पिता जी का स्वर्गवास हुआ है तब से मैं ही उनकी सारी सम्पत्ति का प्रबन्ध करता आ रहा हूँ। संसार के भिन्न-भिन्न कार्यों के सम्बन्ध में बातें हमें ही तय करनी होती हैं। शादी के सम्बन्ध में बातें करते समय लेन-देन की बातें भी तय करनी होती हैं, यह भी मैं जानता हूँ। मुझे आशा है

कि इस विषय को जितना आप समझते हैं शायद उतना ही मैं भी समझ सकूँगा।'

वृद्ध हरमोहन के दिमाग मे अब यह बात धंस पाई कि यह ठीक पागलपन की-सी बात नही कही गई है। जरा-सी झुंझलाहट के साथ उन्होंने कहा, 'जरूरी लेन-देन के बारे में कुछ-न-कुछ तय करना ही होगा।'

सदानन्द में इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अपनी हँसी रोक लेता। इससे जरा-सा फिर हँसकर वह बोला—'श्रीमान् से मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि सब बातें मुझसे ही करने में कोई हानि नही है, क्योंकि मैं यह सम्बन्ध किसी-न-किसी प्रकार ठीक कर लेने के ही विचार से आया हूँ।'

अब हरमोहन जरा-सा नरम पड़े। उन्होने कहा—'लडकी किसकी है ? वे कहाँ रहते हैं ?'

'उनका घर इसी गाँव में है। श्रीमान् हाराणचन्द्र मुखोपाध्याय की दूसरी लड़की है।'

'हाराण की ?'

'जी, हाँ।'

'भला वह क्या देगा ?'

'आप जो मांगेंगे।'

वृद्ध कुछ देर तक सोचते रहे। बाद को वे बोले—'लडकी देखने-सुनने में कैसी है ?'

'आपने उसे देखा है, परन्तु शायद आपको याद नही है। मेरे विचार से देखने-सुनने में तो वह बुरी नही है। आपके पुत्र ने उसे देखा है। उसके साथ शादी करने के लिए भी वे अनिच्छुक नही हैं।'

अब जरा-सा हँसे। वे बोले—'तो फिर ठीक है। इसके सिवा हम गृहस्थी आदमी हैं। हमारे घर में मोम की पुतली की जरूरत तो है नही। देखने-सुनने में वैसी बुरी न हो, साथ ही काम-काज भी कर सकती हो, वही काफी है।'

सदानन्द ने कहा—'इस दृष्टि से वह बिलकुल ठीक है।'

'परन्तु हाराण दे क्या सकेगा ? उसकी हालत तो ऐसी नही है।'

'जी हाँ, हालत उनकी अच्छी नहीं है। लेकिन इस बात को ध्यान में रखते हुए आप जो कुछ माँगेंगे वह देंगे।'

वृद्ध कुछ कठिनाई में पड़ गये। वे सोचने लगे—'मैंने अभी जो बात कह डाली उसे अगर मन में रखता तभी अच्छा था।' लेकिन हरमोहन थे बहुत ही नीति-कुशल व्यक्ति। उन्होंने आसानी से बात सँभाल ली और बोले—'अवस्था कैसी भी हो भैया, लड़की की शादी में कुछ तो खर्च करना पड़ता ही है।'

'अवश्य।'

तब हरमोहन ने अपने अभ्यास के अनुसार ओठों की रही-सही हँसी को भी बिदा कर दिया और वे पत्थर के आदमी बन गये। उन्होंने कहा—'एक हजार रुपये नकद लिए बिना मैं किसी प्रकार शारदा की शादी न करूँगा।'

मुस्कराते हुए सदानन्द ने कहा—'यही सही।'

सदानन्द की बात सुनकर वृद्ध अपने आप ही नाराज हो उठे। उन्होंने अपने आपको एक बहुत ही बड़े आकार के गर्दभ के रूप में सम्बोधित किया। मैंने डेढ़ हजार रुपयों की बातचीत क्यों नहीं की, यह अफसोस उनके हृदय को फाड़कर निकलने लगा। वे सोचने लगे—'जब बात मुँह से निकल गई है तब वह वापस तो की नहीं जा सकती, अब इसे जहाँ तक सुधार सकूँ वहीं तक अच्छा है।' इस विचार से उन्होंने कहा—'इन रुपयों के सिवा लड़की को आभूषण तो देने ही होंगे।'

'कोई बात नहीं।'

'साथ मे कुछ पात्र, वस्त्र तथा घर-गृहस्थी के काम की दूसरी चीजें भी देनी होंगी।'

'जरूर।'

'तो मुझे स्वीकार है।'

'अच्छी बात है। तो कोई दिन तय कर दीजिए।'

कुछ देर इधर-उधर करके वृद्ध ने कहा—'इस शादी की बात अभी आपस में ही रहनी चाहिए। हाराण भी मेरे लिये कोई गैर नहीं है। तो भी जो नियम हैं उन सब का पालन तो करना ही होगा।'

कुछ शंकित होकर सदानन्द ने कहा—'नियम क्या है ?'

वृद्ध ने हँसकर कहा—'नियम वैसे कुछ भी नहीं है, किन्तु कुछ लिखा-पढ़ी जरूर कर लेनी चाहिए।'

'अच्छी बात है। लिखा-पढ़ी भी कर ली जाय।'

'किन्तु लिखा-पढ़ी किसके साथ की जायगी ?'

'मेरे साथ।'

'कब ?'

कुछ देर सोचकर सदानन्द ने कहा—'महीना भर बाद।'

वृद्ध इस बात पर सहमत हो गये।

तब सदानन्द ने कहा—'मेरा एक अनुरोध है।'

'वह क्या है भाई ?'

'यही कि सब लेन-देन की बात तीसरे आदमी के कानों तक न पहुँच सके।'

'क्यों ?'

'इसका कुछ कारण है ?'

हरमोहन व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। सदानन्द के मन को समझ करके उन्होंने कहा—'तुम चुपचाप दान करना चाहते हो।'

सदानन्द चुप रहा। उसका मुख देखकर उसकी इस तरह की स्वार्थ-रहित दया देखकर हरमोहन भी क्षणभर के लिए लज्जित हो उठे। परन्तु यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि हरमोहन में व्यवसायिक बुद्धि काफी मात्रा में थी। इस प्रकार के भाव को अपने मन में उन्होंने अधिक देर तक नहीं रहने दिया। एक रूखी हँसी हँसकर वे बोले—'भैया हमारी अवस्था हो चुकी है, इससे इतनी चक्षुलज्जा भी नहीं होती। अन्यथा हाराण की दशा मुझे बहुत अच्छी तरह मालूम है। जो भी हो, जब तुम चुपचाप दान कर सकते हो तो मैं चुपचाप ग्रहण भी कर सकता हूँ। इसके लिए तुम चिन्ता न करो।'

सदानन्द प्रसन्न भाव से हरमोहन बाबू को नमस्कार करके वहाँ से चलता हुआ।

७

शुभदा को मालूम हुआ, हाराण बाबू को मालूम हुआ और छलना को भी मालूम हुआ कि शारदा के साथ उसकी शादी हो रही है। सब लोगों को यह भी मालूम हुआ कि यह शादी सदानन्द के प्रयत्न से पक्की हुई है। समाचार पाकर रासमणि ने यह मन्तव्य प्रकट किया कि सदानन्द पूर्वजन्म में शुभदा का पुत्र था। यह बात कही गई थी सदानन्द के सामने। उसने मौन भाव से इसे स्वीकार कर लिया। कम-से-कम किसी बात का प्रतिवाद नहीं किया उसने।

तरह-तरह के कामों में पड़े रहने के कारण आज तक उसे अपनी बुआ जी की सम्पत्ति की व्यवस्था करने के लिए जाने का अवसर ही नहीं मिला। समय मिलने पर उसने यह बात शुभदा से कही। शुभदा ने भी उसके इस प्रस्ताव का समर्थन किया। तब बिस्तर आदि बाँधकर श्रीमान् सदानन्द चक्रवर्ती ने कुछ दिनों के प्रवास के लिए यात्रा की। शुभदा का परिवार अब उसका परिवार हो गया था, इसलिए जाते समय वह सब प्रकार की व्यवस्था कर जाने को भूला नहीं। साथ ही उसने शुभदा से जोर देकर कहा कि तुम शादी के लिए हर प्रकार के प्रबन्ध करती रहना।

सदानन्द ने पहुँचते ही अपनी स्वर्गीया बुआ जी की सारी जमीन तथा अन्य प्रकार की वस्तुएँ देखकर उन सबकी अवस्था की जानकारी प्राप्त कर ली। बाद को उस सबका एक आदमी को मालिक बनाकर या यों कहिए कि वह सब बेचकर पन्द्रह दिन में ही फिर हलुदपुर मे लौट आया। तब उसने हरमोहन के साथ लिखा-पढ़ी की, गहने बनवाए, चीज-वस्तु खरीदी और शादी का दिन निश्चित किया। यह सब कर चुकने के बाद उसने शारदाचरण से मुलाकात की। इस बीच में सदानन्द को कभी ऐसा मौका नहीं मिला कि वह एकान्त मे बैठकर उससे दो बातें कर लेता। आज बहुत दिनों के बाद उन दोनों की इच्छा हुई कि कहीं एकान्त में बैठ-कर कुछ देर तक बातें की जायें। इसलिए एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए वे दोनों गंगा किनारे आकर एक जगह पर बैठे।

शारदाचरण ने बैठते ही कहा—'सदानन्द, क्या तुम्हें बचपन की बातें

याद आती हैं।'

सदानन्द—'कुछ-कुछ तो याद आती हैं।'

शारदा—'क्या तुम्हें उस समय की बातें याद आती है जब मैं एक आदमी को बहुत प्यार करता था? तुम्हारे पास जाकर मैं अपने मन की कितनी आशाएँ, कितनी कल्पनाएँ व्यक्त किया करता था। रोप लगने पर मैं कितना रोता और तुम हँसकर उड़ा दिया करते। कभी-कभी तो तुम मेरा मजाक भी उड़ाने लगते। वे सब बातें तुम्हें याद आती हैं न सदानन्द?'

सदानन्द—'वे बातें नहीं याद आवेंगी? अभी कल की बातें हैं वे।' शायद सात-आठ साल से अधिक न हुआ होगा। परन्तु मजाक तो कभी मैंने तुम्हारा उड़ाया नहीं।'

शारदा—'मुझे ऐसा ही मालूम पड़ा करता था, मानो तुम मेरा मजाक उड़ा रहे हो। जो भी हो, बाद को जिस दिन उसने मेरी सारी आशा मिट्टी में मिला दी, अभिमान में आकर दोनों आदमियों ने बोल-चाल बन्द करके चिरकाल के लिए बिदा ले ली, उस दिन कितनी रात तक तुम्हारे पास बैठे-बैठे मैं रोता रहा। वह बात तुम्हें याद है न भाई?'

सदानन्द—'याद है।'

सदानन्द कुछ अन्यमनस्क हो गया। लेकिन उस ओर ध्यान न देकर शारदा ने एक समीपवर्ती स्थान की तरफ अँगुली से इशारा किया और बोला—'यहीं पर वह मरी है।'

शारदा की वह बात मानो सदानन्द के कानों तक पहुँची ही नहीं। गंगा जी मे सफेद पाल के सहारे एक नौका अपनी धुन में उड़ती चली जा रही थी। उसी की ओर सदानन्द देख रहा था। शारदा फिर बोला—'यहाँ ललना डूबकर मरी थी।'

अपना मुँह फेरकर सदानन्द बोला—'कहाँ?'

शारदा—'यहाँ।'

सदानन्द—'तुम्हें कैसे मालूम हुआ?'

शारदा—'यहाँ उसकी साड़ी मिली थी।'

सदानन्द उठकर खड़ा हो गया। वह बोला—'तो चलो, एक बार वह साड़ी ही देख आवें।'

शारदा हँसने लगा। वह बोला—'तो क्या वह साड़ी अब भी वहाँ पर पड़ी होगी?'

सदानन्द—'तो चलो वह स्थान ही देख आवें।'

दोनों आदमी जाकर वहाँ पर खड़े हुए। पानी लेकर सदानन्द ने आँख-मुँह धोया। बाद को फिर आकर वह यथास्थान बैठा।

शारदा—'सदानन्द, मुझे बड़ा पश्चात्ताप होता है।'

सदानन्द—'क्यों?'

शारदा—'किसी-किसी दिन मुझे ऐसा लगता है, मानो मैं ही उसकी मौत का कारण बना हूँ।'

सदानन्द—'यह क्यों?'

शारदा—'भगवान जानें, उसकी आयु समाप्त हो गई थी या नहीं, किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि अगर मैंने शादी कर ली होती तो शायद अभी तक वह जिन्दा रहती।'

सदानन्द ने एक लम्बी साँस ली। वह बोला—'जो मर गया, 'उसकी मृत्यु अनिवार्य थी। तुम क्या कर सकते थे इस मामले में?'

शारदा—'यह तो मैं जानता हूँ। तो भी यदि मैं उसकी बात मान लेता! यदि उसके साथ शादी कर लेता?'

सदानन्द हँसा। वह बोला—'परन्तु उस अवस्था मे तुम्हारी जाति जो चली जाती।'

कुछ सोचकर शारदाचरण बोला—'जाती तो जाती।'

सदानन्द—'लेकिन अब तुम क्या करोगे?'

शारदाचरण की आँखों मे आँसू आ गये। वह बोला—'अब मैं करूँगा क्या, लेकिन उसकी बात यदि मैंने मान ली होती तो इतना पश्चात्ताप न होता।'

दूसरी ओर देखते हुए सदानन्द बोला—'पश्चात्ताप तुम्हारा धीरे-धीरे दूर हो जायगा।'

शारदा—'अहा, अगर मैं उसके आखिरी अनुरोध की भी रक्षा कर सका होता!'

सदानन्द—'वह कौन-सा अनुरोध?'

शारदा—'उसने मुझसे कहा था कि एक दरिद्र जाति वाले की रक्षा करो, छलना के साथ शादी कर लो।'

शारदा के मुँह की तरफ देखते हुए सदानन्द ने कहा—'तो क्या छलना के साथ तुम शादी न करोगे?'

शारदा—'करूँगा। लेकिन इस तरह शादी करके क्या मैं उसके अनुरोध की रक्षा कर रहा हूँ।'

सदानन्द—'क्यों नही?'

शारदा—'किसी प्रकार से हुई जरूर, लेकिन अच्छा, सदानन्द पिता जी को किस प्रकार राजी किया तुमने?'

सदानन्द बोला—'मैंने उनसे कहा कि शारदा यह शादी करना चाहता है।'

शारदा—केवल इतना ही?'

सदानन्द—'और नही तो क्या?'

शारदा—'क्या मैं पिताजी के स्वभाव से परिचित नही हूँ?'

सदानन्द हँस पड़ा। वह बोला—'तब फिर क्यों पूछ रहे हो?'

शारदा – 'मैं जानना चाहता हूँ कि कितने रुपये देने होंगे?'

सदानन्द—'यह बात जानने से तुम्हें कोई लाभ न होगा।'

शारदा—'सदानन्द, यह तो पाप का धन है!'

सदानन्द—'मैं आशीर्वाद दूंगा कि तुम्हारा जीवन सदा सुखसे बीते।'

शारदा—'समय आने पर वे रुपये मैं लौटा दूंगा।'

'लौटा देना।' यह कहकर सदानन्द उठा और दोनों ही गाँव मे आकर अपने-अपने घर की ओर चले गये। घर आकर सदानन्द ने द्वार बन्द कर लिया। उस दिन फिर वह बाहर नही निकला।

रात मे भोजन के लिए सदानन्द को बुलाने के लिए पहले छलना आई, बाद को उसकी बुआ जी आई, किन्तु उसने द्वार नही खोला, भीतर मे ही कह दिया कि आज मेरा शरीर बहुत अस्वस्थ है। देखने के लिए शुभदा आई, किन्तु तब तक सदानन्द सो गया था। कई बार जोर-जोर से आवाज देने के बाद वह लौट गई।

दूसरे दिन सवेरा होने पर सदानन्द फिर उठा। वह मैदान में गया,

लौटकर भोजन करने आया, हंस-हँसकर गाना गाने लगा, प्रतिदिन जो-काम वह किया करता था वे सब करने लगा। परन्तु कोई यह न समझ सका कि सदानन्द दिन-प्रतिदिन बदलता जा रहा है—'जैसा वह कल था, आज ठीक वैसा नहीं है।'

धीरे-धीरे छलना की शादी का दिन आ गया। आज सभी के मुख पर आनन्द की रेखा विराजमान थी। सभी के मन मे उत्साह था। सदानन्द को बैठने के लिए अवकाश नही था। हाराण मुकर्जी की बातों का अन्त नहीं था। बुआ जी के आँसू बन्द नही हो पाते थे। घर मे जो आता उसी से वे रो-रोकर कहा करती—'ऐसे सुख के दिन में भी ललना के अभाव के कारण मेरे हृदय मे तिल भर भी सुख नही है।' उनके साथ-ही-साथ सम्भवतः और भी कई आदमी इस व्यथा का अनुभव कर रहे थे। केवल शुभदा आज बहुत शान्त थी, बहुत गम्भीर थी।'

क्रमशः सन्ध्या हुई। जोर-जोर से बाजे बजने लगे। बहुत से लोग एकत्रित हुए। अन्त में शुभ घड़ी और शुभ लग्न में छलनामयी का विवाह हो गया। -

आज सारे गांव में वृद्ध हरमोहन की वाह-वाह की धूम मच गई थी। उनके शत्रु ने भी मन-ही-मन यह स्वीकार किया—'मन में बहुत उदारता का भाव है।'

मुँह पर जब कोई प्रशंसा करने लगता तब वृद्ध हरमोहन प्रसन्न भाव से कहते—'बताइए, करूँ क्या? कोई दूसरा लड़का तो है नही मेरे, उसकी इच्छा हो आई कि मैं यही शादी करूँगा। तब मैं क्यों अस्वीकार कर दूँ? इसके अतिरिक्त गाँव भर में उनकी समानता का केवल मेरा ही एक घर है। बेचारे कहाँ जायँ शादी करने के लिए? पड़ोसी के भी सुख-दुख की ओर तो जरा-सा ध्यान रखना ही पड़ता है। यह बात जब शारदाचरण सुनता तब दूसरों की आँखें बचाकर वह क्रोधित हो उठता।

८

बहुत-से काम करने को थे। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करने

के बाद वे सब सिद्ध हो गये। अब आराम से लेटना-बैठना अच्छा मालूम पड़ता था। परन्तु दो-चार दिन के बाद उस आराम में भी आलस्य आ गया। हाथ-पैर समेट कर बिलकुल बेकार बैठे-बैठे भी तबीयत ऊब जाती है। सदानन्द ने छलनामयी की शादी के सम्बन्ध की हर प्रकार की व्यवस्थाएँ कीं, नितान्त ही गुप्त रीति से हरमोहन को खूब ठिकाने से उसने चार पैसे घूस दिये, आखिर में जब शादी हो गई तब वह इच्छानुसार बिस्तरे पर करवटें बदल-बदलकर खूब आराम से तीन-चार दिन तक लेटा रहा। उस समय उसका जी इतना हल्का हो गया था मानो इतने दिनों तक हत्या के अभियोग मे वह गिरफ्तार था और अदालत से बरी हो जाने के कारण छोड़ दिया गया है।

दो-चार दिन तक इसी प्रकार आराम से लेटे-लेटे समय व्यतीत करने के बाद सदानन्द को ऐसा मालूम पडने लगा मानो शय्या कुछ गरम हो उठी है, तकिया कुछ कड़ा हो गया है, साथ ही घर में भी अन्धकार कुछ अधिक मात्रा में प्रविष्ट हो गया। उस समय प्राय: सन्ध्या हो गई थी। पानी की नन्ही-नन्ही बूँदें सारे दिन पड़ती रहीं। वे उस समय भी रुकी नहीं थीं। काले-काले बादल हवा के छोटे-छोटे झोकों के कारण थोड़े-बहुत बिखर गये थे जरूर, लेकिन बूँदों का टपकना बन्द नहीं हुआ था अभी तक। बूँदों के रुकने का कोई लक्षण भी नहीं मालूम पड़ रहा था। ऐसे समय में लेकिन वह निकल पड़ा।

बड़ी देर तक कभी इस रास्ते में, कभी उस रास्ते में, टहलने के बाद कपड़े भिगोकर और पैरों में कीचड़ लपेटकर सदानन्द हाराणचन्द्र के घर पहुँचा। शुभदा शायद उस समय रसोई घर में थी। सदानन्द उधर गया नहीं, बुआ जी शायद पड़ोस में ही किसी के यहाँ घूमने गई थी। उनके सम्बन्ध में भी उसने किसी प्रकार की पूछ-ताछ नही की। पैर धोकर तनिक इधर-उधर देखने के बाद वह आकर उसी कमरे में चला गया जिसमें माधवचन्द्र लेटा हुआ था।

बहुत दिनों से माधवचन्द्र से सदानन्द की भेंट नहीं हुई थी। आज वह उससे बातें करने के लिए गया। ललना जब से गई है तब से माधव-चन्द्र भी क्रमशः बहुत समझदार होता जा रहा था। नितान्त ही बहुदर्शी

वृद्ध के समान सब विषयों में बहुत सोच-विचार कर वह अपनी सलाह प्रकट किया करता था। खाने को भी वह कभी कुछ नहीं माँगता। बहाने भी वह इधर-उधर के नहीं बनाया करता था। बोलता भी वह बहुत नहीं था। एक के ऊपर एक तकिया रखकर उन्हीं के सहारे से एक दार्शनिक के समान वह प्रायः मौन भाव से बैठा रहता।

माधवचन्द्र आज भी उसी प्रकार बैठा था। पास आकर सदानन्द के खड़े हो जाने पर वह बोला—'सदा भैया, अब तुम मेरे पास नहीं आते?'

सदानन्द—'मुझे बहुत से काम करने को थे, इसीलिए।'

माधव—'सब काम-काज खत्म हो गये न?'

सदानन्द—'हाँ।'

माधव—'छोटी दीदी कब आवेंगी लौटकर?'

सदानन्द—'तीन-चार दिनों के बाद।'

माधव—'सदा भैया, बहुत दिनों से तुमसे एक बात कहनी थी लेकिन आज तक मैं कह नहीं सका।'

सदानन्द—'क्यों?'

माधव—'तुम्हें मैं कभी अकेले मे पा नहीं सका, इससे यह बात भी नहीं कही जा सकी।'

सदानन्द माधव के समीप ही बैठ गया। उसने कहा—'एकान्त में कहने की कौन-सी बात है माधव?'

माधव—'दीदी चुपके से तुम्हीं से बतलाने को कह गई थी भैया।'

सदानन्द—'कौन माधव?'

माधव—'दीदी। बड़ी दीदी जब रात में गई तब तुम नहीं थे न, इससे वे कह गई थी कि आने पर मैं तुमसे कह दूँ कि दीदी चली गई।'

थोड़ा-सा पास आकर सदानन्द ने माधव के शरीर पर हाथ रख दिया। वह बोला—'क्यों गई माधव, क्या किसी ने उसे कुछ कहा था?'

माधव—'किसी ने भी नहीं।'

सदानन्द—'तब वे क्यों चली गई?'

माधव—'मैं भी जाऊँगा।'

सदानन्द—'छिः!'

माधव तनिक हँसा। बाद को वह बोला—'और कोई जानता नहीं। केवल मैं जानता हूँ और दीदी जानती हैं। वह मुझसे पहले चली गई हैं। मेरे लिए सब ठीक-ठाक करने के बाद मुझे भी ले जाएँगी। वहाँ हम दोनों खूब सुखपूर्वक रहेंगे।' माधवचन्द्र अपने मुख को बहुत प्रफुल्लित करके एक बार फिर मुस्कराया बाद को घूमकर वह बोला—'दीदी आकर मुझे ले जाएँगी।'

सदानन्द बड़ी देर तक चुप बैठा रहा। बाद को वह बोला—'कब ?

माधव—'जब मेरा समय हो जायगा।'

सदानन्द—'माधव, यह सब बातें किसने सिखाईं ?

माधव—'बड़ी दीदी ने।'

सदानन्द—'उसने कहा है तुम्हें ले जाने को ?'

माधव—'हाँ।'

सदानन्द—'अगर वह न ले जाय ?'

माधव—'वह ले क्यों न जायगी ? जरूर ले जायगी।'

सदानन्द—'अगर वह न ले जाय तो क्या तुम अकेले जा सकोगे ?'

माधव जरा-सा खिन्न हो गया। थोड़ी देर तक वह सोचता रहा, बाद को बोला—'कह नहीं सकता।'

सदानन्द भी खामोश रहा। माधव फिर बोला—'सदा भैया, क्या वहाँ अकेले जाना सम्भव हो सकता है ?'

सदानन्द—'हाँ ! नहीं तो तुम्हारी दीदी कैसे गई है ?'

माधव—'तो क्या मैं भी जा सकूँगा ?'

सदानन्द—'जा सकोगे।'

माधव फिर सोचने लगा। बाद को दुःखित भाव से बोला—'परन्तु मैं जाऊँगा किस प्रकार ? मेरे शरीर में जरा भी तो बल नहीं है।' सदानन्द माधव का मुँह देखता रहा। माधव कहने लगा—'दीदी जब गईं हैं तब उनके शरीर में खूब बल था। लेकिन मैं किस तरह जाऊँ ? इस समय तो मैं खड़ा तक नहीं हो सकता हूँ। क्या मैं इतनी दूर तक जा सकूँगा?'

सदानन्द के नेत्रों में आँसू आ गये। अन्धकार में माधव ने उसे देखा

नहीं। सदानन्द उस वक्त अनुभव कर रहा था कि अब माधव के दिन बीत चले हैं। कुछ ही दिनो का अब मेहमान है। याद को इस संसार मे इसका लेना-देना सदा के लिए समाप्त हो जाएगा। उसका ध्यान गया शुभदा की दशा पर। ललना की भी उसे याद आई। उसने देखा कि अब मैं जरा झमेले मे पड़ गया हूँ। पाँच आदमियों को साथ ले लेने के कारण अब निश्चिन्त भाव से आनन्दपूर्वक दिन नहीं व्यतीत कर पाता हूँ। अब मैं उस तरह गाना भो नही गा पाता हूँ। इच्छानुसार घूमने-फिरने की भी सुविधा नही रह गई है मुझे। उस तरह की मौज नही कर पाता हूँ अब। पहले मैं सुखी था, अब दुःखी हो गया हूँ। पहले मैं त्यागी था, अब मुझमे आसक्ति आ गई है।

आँखों का जल पोंछकर सदानन्द ने आज पहले-पहल यह अनुभव किया कि जीवित रहने में वैसा सुख नही है। जो जीवित है उसे ही क्लेश है। जो मर गया है, संसार के इस शोक-सन्ताप से बच गया है। उस दिन रात में बडी देर तक कितनी ही बातें सोचता रहा। उसके मन मे आया—माधवचन्द्र अब मरने को ही है। उसके बाद उसका ध्यान गया शुभदा की तरफ। उसके मन मे आया कि मृत्यु के मुख मे कूदकर ललना ने अपना सारा दुःख-क्लेश लाद दिया है उसकी छाती पर।

उस रात मे माधवचन्द्र के हृदय मे भी अधिक सुख नही था। अब एक दुर्भावना ने आकर उसपर अधिकार जमा लिया। इतने दिनों तक तो वह निश्चिन्त था। उसकी धारणा थी कि ललना आकर मुझे ले जायगी। लेकिन सदा भैया ने आज और तरह की बात कह दी। अब वह इस विचार मे पड गया कि मेरे शरीर में बल बिल्कुल नही है। किस प्रकार मैं इतनी दूर चलकर वहाँ तक पहुँच सकूँगा? सोचते-सोचते बड़ी रात को उसने निश्चय किया कि मेरी दीदी कभी झूठ नही बोलेगी। समय आने पर वह अवश्य आ जाएगी। तब बहुत कुछ शान्त मन से माधवचन्द्र सो गया।

और भी कितने दिन बीत गये। छलना लौटकर पिता के यहाँ आ गई। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ एक बार फिर नये सिरे से वर-वधू को देख गईं। कितनी हँसी-मजाक, कितना विनोद किया गया। हरमोहन स्वयं आकर अपनी मीठी-मीठी बातों से सबको तृप्त कर गये। समधिन महोदया का नमस्कार ग्रहण करके वे लौट गये। कमर में सफेद चद्दर बाँधे हुए हाराण बाबू ने ब्राह्मणपाड़ा की प्रत्येक दूकान पर एक-एक बार बैठकर उन सब को मोहित किया। इस तरह कितनी घटनाएँ हो गईं।

आज माधवचन्द्र की पीड़ा बहुत अधिक बढ़ गई थी। शय्या पर पडे-पड़े वह छटपटा रहा था और बगल में सिरहाने और पायताने पर बुआ जी, कृष्णादेवी और छलना वगैरह बैठी थीं। शुभदा वहाँ नहीं थी, वह रसोई-घर में बैठी हुई कुछ खाद्य-पदार्थ तैयार कर रही थी, साथ ही साथ रोती भी जाती थी। सदानन्द गया था डाक्टर बुलाने के लिए और हाराणचन्द्र? वे 'अभी आता हूँ' कहकर घर से निकले हैं और तीन घंटे बीत गये फिर भी अभी तक नहीं लौट सके। सभी लोग सामने बैठे थे। कृष्णादेवी माधव के शरीर पर हाथ फेरती जाती थीं और डाक्टर की इन्तजार में वे मन ही-मन मिनट-मिनट गिनती जाती थीं।

धीरे-धीरे सन्ध्या हो जाने के थोड़ी देर बाद डाक्टर साहब आ गये। वे आज छ-सात दिन से प्रतिदिन आया करते थे। वे रोगी को इधर प्रति-दिन देख रहे थे। रोग उसका कम नहीं हो रहा है, बल्कि बराबर बढ़ता ही जा रहा है, यह बात वे जानते थे। यह बच न सकेगा, यह बात भी उन्हें मालूम हो गई थी। आज उनकी जाने की इच्छा भी नहीं थी, लेकिन सदानन्द के प्रबल अनुरोध के कारण उन्हें आने के लिए बाध्य होना पड़ा था।

घर आकर डाक्टर लोग रोगी को जिस प्रकार देखा करते हैं उसी प्रकार उन डाक्टर साहब ने माधव को भी देखा। बाद को बाहर आकर उन्होंने सदानन्द को बुलाकर कहा—'सदानन्द बाबू, आज अधिक सावधान रहिएगा। यह लड़का शायद आज रात में न बच सकेगा।'

वह भी यह बात जानता था।

बहुत रात बीत जाने पर हाराणचन्द्र लौटकर आये। कमरे के बाहर ही चोर की तरह एक जगह खड़े होकर उन्होंने यथासम्भव भीतर का समाचार मालूम कर लिया। बाद को थोडा-सा द्वार खोलकर मुँह बढ़ाकर वे बोले—'माधव कैसा है?'

कोई कुछ बोला नही। केवल शुभदा निकल आई। भोजन की थाली सामने रखकर वह पास ही बैठ गई।

हाराणचन्द्र ने कहा—'माधव कैसा है?'

'शायद अच्छा नहीं है।'

'अच्छा नही है?' थोडा-सा रुककर हाराणचन्द्र फिर बोले—'मेरा भी शरीर अच्छा नही है।'

क्या सोचकर हाराणचन्द्र ने यह बात कही, क्या सोचकर उन्होंने अपनी अस्वस्थता की चर्चा की, यह कहा नही जा सकता। उनकी इस बात में सत्य या असत्य का अंश कितना था, यह भी ठीक-ठीक नही कहा जा सकता। किन्तु यह बात शुभदा के कान तक पहुँच नही पाई।

हाराणचन्द्र मन-ही-मन बहुत दुखी हुए। स्त्री के सम्मुख अपना शरीर अच्छा न होने की बात कहकर भी कोई स्नेहमय प्रत्युत्तर नहीं पा सकना उन्हें अस्वाभाविक-सा मालूम हुआ। उन्होंने अपने आपको बहुत ही अपमानित अनुभव किया। वे नशा करके आये थे, इससे वह अपमान का साधारण-सा भी अंकुर दो-चार मिनट मे ही एक विशाल तरु के रूप मे परिणत हो गया और उनकी शाखाएँ तथा टहनियाँ हाराणचन्द्र के सारे दिमाग मे फैल गई। क्रोध मे थाली लेकर उन्होंने कहा—'अब मैं खाऊँगा? ढेलकर? क्या प्राण देना है?'

चौके से उठकर हारणचन्द्र ने हाथ-मुँह धोया, कुल्ला किया और वे निर्दिष्ट कमरे मे बिछी हुई चारपाई पर जाकर लेट रहे। उन्होंने मन-ही-मन सम्भवतः यह स्थिर कर लिया कि मेरी तबीयत बहुत खराब है।

इधर शुभदा हाथ धोकर माधव के पास आई और बैठ गई। उसे देखकर कृष्णादेवी ने कहा—'हाराण कहाँ है?'

'उनकी तबीयत खराब है। वे लेट रहे हैं।'

कुछ देर तक कृष्णादेवी चुप रही—बाद को वे धीरे-धीरे बोली—'मनुष्य को दया-माया नही होगी तो कम-से-कम आँखों के सामने आने पर तो तनिक शील आ ही जाता है।'

यह बात सुनकर रासमणि ने ओठ टेढा कर लिया। क्रमश. रात अधिक बीतने लगी। मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए कितने व्यक्तियों के पास बैठे बैठे कृष्णादेवी ने रात बिताई। कितनी मौतें उन्होने देखी थी। उन्हें ऐसा मालूम पडा कि माधव की थोड़ी-थोड़ी साँस चल रही है। कुछ देर के बाद माधव बोल उठा—'सिर मे बडा दर्द है।'

कृष्णा बुआ उसके सिर पर हाथ फेरने लगीं। थोड़ा-सा रुककर वह फिर बोला—'पेट में बड़े जोर का दर्द हो रहा है। ऐसा जान पड़ रहा है, मानो बड़े जोर से उल्टी आ जायगी।'

सभी ने सब के मुँह की ओर देखा। मानो वहाँ के हर एक आदमी ने दूसरे के मुख के भाव का अध्ययन करने का प्रयत्न किया।

फिर कुछ क्षण चुपचाप ही बीत गये। सभी लोग मुँह बन्द किये हुए बहुत ही दुःखी होकर अन्तिम घड़ियों की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कुछ क्षण बाद माधव बहुत ही क्षोभित होकर लड़खड़ाती हुई आवाज मे बोला—'बड़े जोर की प्यास लगी है।'

बुआ जी ने दूध के बदले मे मुँह में थोड़ा-सा गंगाजल डाल दिया। आग्रह के कारण माधव वह सारा का सारा पी गया और बड़ी देर तक खामोश पड़ा रहा।

धीरे-धीरे साँस बढ गई। सभी का ध्यान उस तरफ गया। कृष्णादेवी को नाड़ी देखना आता था। काफी देर तक माधव की कलाई पकड़े रहने के बाद सदानन्द को पास बुलाकर उन्होंने कहा—'अब इसे नीचे लिटा देना चाहिए।'

सदानन्द चुप रहा।

रासमणि के कानो तक यह बात पहुँच गई थी। सिसकते-सिसकते उन्होंने कहा—'अब क्या देख रहे हो सदानन्द ?'

छमना रो पड़ी। कृष्णा बुआ भी रोने लगी, साथ-ही-साथ माधव का

चेतनाहीन शरीर नीचे उतर आया।

वड़ी देर के वाद माधव ने फिर एक वार मुँह खोला। कृष्णा वुआ ने पहले की तरह मुँह में थोड़ा-सा पानी डाल दिया। माधव को मानो थोड़ा-सा वल मिला। अब उसकी आँखें खुल गईं। वाद को धीरे-धीरे हँसकर वह बोला—'सदा मैया, दीदी आई हैं।'

छलनामयी पास ही बैठी हुई थी। आज सारी रात उसे नींद नहीं आई। माधव की यह वात कान में पड़ते ही उसका शरीर काँप उठा। डर के मारे वह माता से लिपट कर बैठी। राममणि का भी सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा।

कुछ देर और बीत जाने के वाद माधवचन्द्र वहुत ही अस्थिर हो उठा। उसका माथा घूमने लगा। वड़े जोर-जोर से साँस चलने लगी। यह दशा देखकर कृष्णादेवी रोते-रोते बोली—'अब क्या देख रहे हो? समय हो गया है।' रासमणि भी चीख उठी—'परलोक का काम करो। तुलसी के नीचे...।'

उस समय सभी लोग चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगे। सबके सम्मिलित चीत्कार के कारण हाराणचन्द्र की नींद भंग हो गई। दौड़ते हुए बाहर आकर उन्होंने देखा कि माधव उठाकर बाहर लाया गया है। वे भी पुत्र के शरीर को गोद मे लिये हुए चीखते-चीखते तुलसी के पेड़ के पास आ बैठे। रोते-रोते उन्होंने पुकारा—'बेटा, माधव!'

उसने भी एक वार गों-गों करके कहा—'बा...बा!'

१०

बहुत ही अच्छे ढंग से सजा हुआ एक महल था। उसके एक कमरे में कोच पर अपूर्व सुन्दरी मालती अपनी आभा से स्थान को देदीप्यमान करती हुई विराजमान थी। पास ही संगमरमर पत्थर से बने हुए साइन बोर्ड के ऊपर चाँदी के शमादान मे बत्ती जल रही थी। उसी की रोशनी मे मालती एक पुस्तक पढ़ रही थी। जिस कमरे में वह बैठी थी उसकी सजावट महल के अन्य कमरों की अपेक्षा कहीं अधिक थी। फर्श पर रंग

विरंगा गलीचा बिछा हुआ था। दीवार पर भिन्न-भिन्न रंगों में फूल-पत्ती का काम किया हुआ था। उस पर भी बहुत से आकर्षक और कलापूर्ण चित्र टंगे हुए थे।

राजप्रासाद के समान इस भव्य महल में मालती अकेली ही सोने की सजीव प्रतिमा के समान विराजमान थी। दूर पार्थिव सौंदर्य की सहस्र गुना वृद्धि करने के लिए उसने कितनी विधियों का अवलम्बन किया था, लेकिन उस वक्त उसकी रूपराशि तथा उसके विन्यास-कौशल को देखने वाला वहाँ कोई नहीं था। इसलिए मालती अपनी धुन में पुस्तक पढ़ रही थी। लेकिन वह पढ़ क्या रही थी खाक? पंक्ति पर पंक्ति उसके दृष्टिपथ से हटती जा रही थी, पृष्ठ पर पृष्ठ वह उलटती जा रही थी, लेकिन हृदय में उसके एक भी अक्षर प्रवेश नहीं कर रहा था। शायद वह इससे पहले रो रही थी। सूखे हुए आँसुओं के दाग उस समय भी उसके कपोलों पर दिखाई दे रहे थे।

एक ऐसे सुविशाल भवन में जहाँ सभी तरह की सुख-सुविधाएँ प्रचुर मात्रा में वर्तमान थी, निवास करने का सौभाग्य पाकर भी मालती क्यों रो रही थी, यह बात तो उसके अतिरिक्त कदाचित और किसी को भी नहीं मालूम थी, लेकिन वह रो रही थी, इसमें सन्देह नहीं था और अपनी उस रुलाई को रोकने के लिए उसने पुस्तक का आश्रय ग्रहण किया था। मालती का हृदय उस वक्त बहुत दुखी था। शरीर पर उसने किसी तरह का अलंकार नहीं धारण किया था। वस्त्र भी वह साधारण ही पहने हुई थी। कुछ देर तक पन्ने उलटने के बाद उसने पुस्तक साइनबोर्ड पर फेंक दी और कोच की बाजू पर सिर रखकर वह चुपचाप बैठी रही। फिर उसकी आँखों मे आँसू आ गये। इस बार उसे रोकने का प्रयत्न उसने नहीं किया। इससे शायद आँसुओं की एक के बाद एक बूंद कोच पर बिछी हुई मखमली चादर पर गिरने लगीं।

इसी तरह काफी समय बीत जाने के बाद सुरेन्द्रनाथ ने कमरे में प्रवेश किया। इतने ऊँचे गलीचे पर पैरों की आहट हो ही नहीं सकती थी, इससे उनके आगमन की सूचना मालती को नहीं मिल सकी। जिस प्रकार आँसू बहा रही थी, उसी तरह बहाती रही। निश्चल भाव से ..

सुरेन्द्रनाथ देखने लगे। कुछ देर के बाद और भी पास जाकर वे खड़े हुए। बाद को उन्होंने पुकारा—'मालती !'

चौंककर मालती ने देखा। वह बोली—'आओ !' सुरेन्द्रनाथ उसके पास बैठ गये। मालती के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर स्नेह से गद्गद स्वर मे बोले—'तुम फिर रो रही थी ?'

अब तो मालती हाथों-हाथ पकड़ ली गई थी। इसलिए इच्छा होने पर भी वह 'नहीं' न कर सकी। चुप ही रही वह।

सुरेन्द्रनाथ—'तुम रोती क्यों रही हो ?'

मालती बोली नहीं।

सुरेन्द्रनाथ भी कुछ देर तक मुँह से कोई शब्द नहीं निकाल सके। बाद को उन्होंने मालती के दोनों हाथों को और भी जोर से दबाकर पकड लिया और धीरे-धीरे मुँह से यह बात निकाली—'दुःख यही है कि इतनी कोशिश करने पर भी मैं तुम्हे सुखी करने में समर्थ न हो सका। हृदय की हजारों कामनाओं द्वारा भी मैं तुम्हारा हृदय प्राप्त न कर सका।'

मालती इस बात का कोई उपयुक्त उत्तर नही दे पाई। एक और भी काम उसके द्वारा सम्पन्न नहीं हो सका। इससे पहले ही वह मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर चुकी थी कि चाहे कुछ भी हो, मैं रोऊँगी नहीं। लेकिन आँसुओं के ऊपर वह अपना प्रभुत्व दृढ़तापूर्वक स्थापित कर रखने में समर्थ नहीं हो सकी। वे जिस तरह झड रहे थे उसी तरह झडने लगे।

सुरेन्द्रनाथ कहने लगे—'क्या करने से एक आदमी सुखी हो सकता है, यह मनुष्य तो समझ नही सकता। देवतागण समझ सकते हैं या नहीं, इसमें भी संदेह है। तृप्ति के लिए, यह भवन मैंने इस तरह सजाया; देवी की यह प्रतिमा इस भवन मे, इतने यत्न से, स्थापित की लेकिन क्या मैं सुखी हो सका ? सुख की तो चर्चा ही करना व्यर्थ है। मुझे तो ऐसा लगता है, मानो मेरे दु:ख की मात्रा में वृद्धि हुई है। जिसे सुखी करने के लिए मैंने इतना उद्योग किया उसे एक दिन भी सुखी न देख सका। जब से मैंने तुम्हें पाया है तब से लेकर आज तक, तुम्हारे अधर-प्रदेश मे तिल मात्र भी हँसी की रेख नही देख सका।'

यह बात कहते-कहते सुरेन्द्रनाथ ने मालती के हाथों को छोड़ दिया और नितांत ही अधीर भाव से उसका आँसुओं से मलिन मुख पकडकर ऊपर की तरफ उठाया। बाद को वह विह्वल भाव से बोले—'मालती, कितने दिन बीत गये लेकिन क्या तुम किसी तरह भी सुखी न होओगी? क्या किसी तरह एक बार भी हँसकर मेरी तरफ न देखोगी?'

हाथ उठाकर मालती ने आँखें पोंछी।

'इस सौंदर्य मे कितना अधिक आकर्षक है, इस रूप पर कितना अधिक मुग्ध हुआ हूँ मैं, यह प्रकट करने के उपयुक्त शब्द मेरे पास नहीं हैं। तुम्हें जी भरकर सजाऊँगा, इस कामना से कितने अलंकार ले आया हूँ मैं, कितनी साड़ियाँ, कितने जम्फर, कितने ब्लाउज इकटठा कर रक्खे हैं मैंने, लेकिन एक क्षण के लिए भी तुम नही धारण कर सकी हो उन सबको अपने शरीर पर। मालती, क्या तुम मुझे देख नही सकती हो? मुझे देखकर तुम्हारे मन की प्रसन्नता की जगह पर विरक्ति का भाव उत्पन्न होता है?'

सुरेन्द्रनाथ की गोद में सिर रखकर मालती रोने लगी। यह देखकर सुरेन्द्रनाथ की भी आँखों में आँसू आ गये। प्यार के साथ मालती के सिर पर हाथ रखकर गद्‌गद् स्वर में वे बोले—'तुम मुझे देख नही सकती हो, यह नहीं है कहना मेरा। मेरे मन में कितनी बातें आ रही हैं तुम्हारे बारे में। बुरा न मानना, मैं सोचता हूँ कि आज मैं अपने मन की बातें कह डालूं। मेरा विश्वास है कि तुमने जिस मार्ग पर पैर रक्खा है, नीच स्त्रियाँ आत्म सुख के ही लिए उसका सहारा लिया करती हैं और वस्त्र-आभूषण, धन-रत्न तथा ऐश्वर्य के अतिरिक्त उनके सुख की और भी कोई सामग्री हो सकती है, यह मुझे ज्ञात नहीं है लेकिन तुम उस श्रेणी की स्त्रियों के समान नही मालूम पड रही हो। इसमे मैं यह भी नहीं समझ पाता हूँ कि क्या करने पर तुम्हें सुख मिल सकेगा। और मालूम होता तो आज तुम सुखी हो गई होती।'

ये सब बातें कहते-कहते सुरेन्द्रनाथ कुछ देर तक चुप रहे, बाद को कुछ गम्भीर होकर वे बोले—'मालती, क्या तुम्हारे स्वामी जीवित हैं?

सुरेन्द्रनाथ की गोद में ही रक्खे-रक्खे सिर हिलाकर मालती ने सूचित

किया—'मेरे स्वामी अब इस संसार में नहीं हैं।'

'ऐसी दशा में अगर मैं तुम्हारे साथ शादी कर लूँ तो क्या तुम सुखी हो सकोगी ? बताओ, बताओ, ऐसा करने में भी मैं संकोच का अनुभव न करूँगा।'

यह बात सुनते ही मालती सुरेन्द्रनाथ के चरणों पर गिर पड़ी। हाथों से उनके चरणों को पकड़ कर उन्हीं में उसने अपना मुँह छिपा लिया। लेकिन सुरेन्द्रनाथ ने उसका मुख उठाने की कोशिश नहीं की। उन्होंने यह समझ लिया कि आँखों के पानी से मेरे दोनों ही चरण धोये जा रहे हैं। तो भी उन्होंने मालती को उठाया नहीं। एक लम्बी साँस लेकर वे नीरव भाव से बैठे रहे।

इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये। अन्त में खिन्न भाव से धीरे-धीरे वे कहने लगे—'भगवान जाने मुझे क्या हो गया है। तुम्हें मैंने अन्तःकरण से प्यार किया है या तुम्हारी इस अतुलित रूप-राशि के कारण उन्मत्त हो गया हूँ, यह मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता। लेकिन अब कर्तव्य बुद्धि मेरी स्थिर नहीं है इस समय। अच्छे-बुरे पर विचार करके उसका निर्णय करने की शक्ति मुझे छोड़कर चली गई। तुम्हारी एक बात के लिए कदाचित मैं प्राण तक अर्पण कर सकता हूँ। ईश्वर जानते हैं, तुम्हारा हृदय प्राप्त करने के लिए—मिथ्या नहीं बोल रहा हूँ, मैं सच कह रहा हूँ—मैं अपने आपको भूल गया हूँ। जो होनी होगी, वही होगी। लेकिन तुम बतला दो कि अगर शादी के ही द्वारा सुखी हो सको तो मैं तुम्हारे साथ शादी करने के लिए तैयार हूँ। जाति, कुल, इतने प्रतिष्ठित वंश की मर्यादा की तरफ मैं जरा भी ध्यान न दूँगा।'

ये सब बातें मुँह से निकालते-निकालते सुरेन्द्रनाथ की आँखें आँसुओं से भर गईं। कण्ठ रुद्ध हो गया। कुछ देर तक रुककर उन्होंने आँसू पोछ डाले। बाद को धीरे-धीरे, बहुत ही मन्द स्वर में, वे बोले—'उसके बाद, मालती हम लोगों के समान मनुष्यों के लिए बहुत रास्ता खुला हुआ है। जब मैं सहन न कर सकूँगा, तब आत्महत्या करके सीधे नरक की तरफ चला जाऊँगा।'

मालती से अब न सहा गया। रोते-रोते वह बोली—'यह बात तुम

मुँह से मत निकालो। तुमने मुझे जीवन-दान दिया है, मेरी लज्जा का निवारण किया है, दया करके मुझे आश्रय दिया है। वर्ना शायद अब तक मैं जीवित न रहती। मैं नीच हूँ, पापिष्ठा हूँ, लेकिन कृतघ्न न हो पाऊँगी। तुम्हारी दया, तुम्हारा स्नेह इस जीवन मे मुझे कभी भूल न सकेगा। इन सब का बदला क्या मैं इसी प्रकार दूंगी? इसी तरह मेरा उद्धार होगा तुम्हारे ऋण से?'

एक लम्बी सांस लेकर सुरेन्द्रनाथ बोले—'किस तरह तुम्हारा उद्धार होगा, यह तो भगवान जानते हैं। मैं नही जानता। तुमसे मैं किस तरह बतलाऊँ कि इधर एक महीने से मैं कैसी यन्त्रणा, कैसी आन्तरिक व्यथा को सहन कर रहा हूँ। मन में दुखी न होना, लेकिन कहने में मुझे लज्जा आ रही है कि इन थोड़े ही दिनों में एक स्त्री का इस तरह का दास बन बैठा हूँ। एक व्यक्ति—एक व्यक्ति—तुम—तुम जो भी हो, मैं तो तुम्हारे लिए अपने पिता-पितामह के वंश की मर्यादा तक का अन्त करने पर उतारू हो गया हूँ।'

मालती रुक-रुककर रुँधे हुए कण्ठ से कहने लगी—'मैं तुम्हारी दासी की भी दासी होने के योग्य नही हूँ। मैं कौन हूँ जो तुम मेरे लिए इतनी बड़ी हानि स्वीकार करोगे—अपना वंश तक टेढ़ा होने दोगे? मैं आजन्म की दुखियारी हूँ। इतनी करुणा जीवन में मैंने और कभी नही पाई।' बाद को रोते-रोते वह बोली—'यही अन्त हो, ईश्वर करें, यही मेरे जीवन की अन्तिम घटना हो।'

बड़े प्यार से मालती का हाथ पकड़ कर सुरेन्द्रनाथ ने उसे उठाया। बाद को उसे अपनी बगल में बैठाकर वे बोले—'लेकिन किसी तरह भी तो तुम सुख नहीं पा रही हो।'

आँखों से अञ्चल का छोर लगाये हुए मालती बोली—'हम लोग बहुत दरिद्रता से घिरे हुए है।'

सुरेन्द्रनाथ—'लेकिन मैं तो दरिद्र नही हूँ। जो कुछ मेरे पास है, वह तुम्हारे पास भी है।'

मालती—'मैं स्वयं अपने बारे में नही कह रही हूँ।'

सुरेन्द्रनाथ—'तब किसके बारे में कह रही हो? तुम्हारे तो कोई

है नहीं।'

मालती—'भगवान् जानें 'इस समय कोई है या नहीं। लेकिन जब मैं चली आई थी तब सब थे।'

सुरेन्द्रनाथ—'यह कैसे ? नाव दुर्घटना के द्वारा...।'

मालती—'यह सब झूठी बात है। नाव दुर्घटना बिलकुल हुई ही नहीं।'

सुरेन्द्र आश्चर्य से मालती के मुँह की तरफ देखते रह गये। कदाचित् एक बार उनके मन में यह प्रश्न उदित हुआ था कि यह प्रवञ्चना है या इसमें सचाई है। लेकिन बाद को उन्हें विश्वास हो गया कि मालती जो कुछ कह रही है, वह सच ही है। इन आँखों, इन आँसुओं के मध्य में भी वंचना, मिथ्या, छिपी रह सकती है, यह बात उनके मन में नहीं बैठ सकी। कुछ देर बाद उन्होंने पुकारा—'मालती !'

'क्या ?'

'क्या यह सब सच है ?'

अब मालती सुरेन्द्र बाबू के मुँह की तरह देखती रही। देखते-देखते उसकी आँखों में आँसू भर गये। सुरेन्द्रनाथ लज्जित हो उठे। अपने हाथ से उसके आँसू पोंछकर कहा—'तो तुम सारा हाल साफ-साफ बताओ।'

अब मालती ने सुरेन्द्रनाथ की गोद में अपना सिर रख दिया और धीरे-धीरे कभी रो-रोकर और कभी स्थिर होकर कहने लगी—'जिस दिन से मैंने जन्म ग्रहण किया है तब से दु:ख की गोद में पालन-पोषण हुआ है मेरा। लेकिन मेरे सब कुछ था। पिताजी ने यथाशक्ति देख-सुनकर मेरी शादी की थी। लेकिन मेरे भाग्य खोटे थे, इससे एक साल में ही विधवा हो गई मैं। जिसके साथ मेरी शादी हुई थी उन्हें एक बार से अधिक शायद मैं देख भी नहीं पाई। पिता के यहाँ थी। तब से पाँच साल तक वहीं रही। पिता जी हमारे गाँव हलुदपुर से प्रायः आधे कोस की दूरी पर जमींदार के यहाँ काम किया करते थे। वेतन वे बहुत थोड़ा ही पाया करते थे। इसी से किसी-न-किसी प्रकार हम लोगों का निर्वाह हो जाया करता था।'

—इतना कहते-कहते मालती का कण्ठ-स्वर भर उठा।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'उस समय तुम्हारे घर में कौन-कौन थे ?'

मालती—'सभी लोग थे। माता, पिता, बुआ, एक बहन और एक छोटा-सा भाई। बाद को रुपये चुराने के अभियोग में पिता जी की नौकरी छूट गई। अब भिक्षा ही हम लोगों की जीवन-यात्रा का सहारा रह गई। किसी दिन कुछ मिल जाता तो हम लोगों का भोजन होता और किसी दिन निराहार ही रह जाना पड़ता। माता जी मेरी सती लक्ष्मी थीं। मागने, याचने या और किसी तरह से जब कुछ मिलता तब घर के सब लोगों को वे खिला देती। वे स्वयं प्रायः उपवास किया करती थी। यहाँ तक कि एक साथ तीन-तीन दिन तक'—इतना कहते-कहते मालती फफक-कर रो पड़ी। कुछ देर के बाद अपने आप को सँभालकर बोलीं 'लेकिन पिताजी इन सब बातों की तरफ थोड़ी-सी निगाह तक नही डालते थे। वे गाँजा पीते, अफीम खाते, कभी कहीं पड़े रहते, लगातार चार-पांच दिन तक घर नही आते थे। मेरा छोटा भाई माधव प्रायः एक साल से बीमार था। उसकी चिकित्सा की कोई उचित व्यवस्था हो नही पाती थी। इधर चिकित्सा के बिना वह अच्छा नही हो रहा था। शायद वह अब तक जीवित भी न हो!' इस समय सुरेन्द्र नाथ की भी आँखे आंसू से भर गई।

उसके बाद मालती ने कृष्णादेवी का हाल बतलाया, सदानन्द का हाल बतलाया और सबके आखिर में छलना का हाल बतलाया। उसने कहा—'छलना की शादी की अवस्था हो गई है, लेकिन दरिद्र के घर की लड़की के साथ शादी कौन करे ? उसके लिए कोई वर नही मिल रहा है। इधर एक निर्दिष्ट अवस्था के भीतर लडकी की शादी न कर देने पर ब्राह्मण की जाति चली जाती है। हम लोगो के भी जातिच्युत होने का समय शायद आ गया। माता जी ने आहार-नीद का परित्याग कर दिया। पिता जी उनकी दशा की तरफ थोड़ा-सा दृष्टिपात तक नही किया करते थे। माता के एक मात्र अवलम्ब थे सदानन्द। लेकिन वे भी उस समय घर में नही थे। अपनी बुआजी को लेकर वे काशी गये हुए थे। पिता जी की नौकरी छूटने पर इसी तरह धीरे-धीरे छः महीने बीत गये। गांव तथा पास-पड़ोस के लोग कितने दिन तक सहायता करते! सदा भाई ने काशी

जाते समय जो पचास रुपये दिये थे वे भी समाप्त हो गये। उस समय की अवस्था का वर्णन अब मुझसे नहीं किया जाता।'

इतना कहकर मालती रोने लगी। सुरेन्द्रनाथ भी रो पड़े। कुछ देर के बाद आँखें पोंछकर उन्होंने कहा—'अब रहने दो, किसी और दिन बतलाना।' आँखें पोंछकर मालती ने कहा—'आज ही बतलाये देती हूँ। लोग मुझे सुन्दरी कहा करते थे। इससे मेरे मन में यह बात आई कि कलकत्ता जाकर मैं कुछ कमाऊँ। यह सोचकर एक दिन रात मे गंगा किनारे पहुँची। मन मे आया कि गंगा जी के किनारे-ही-किनारे कलकत्ता चली जाऊँगी। इस तरह मुझे न तो प्रायः कोई देख पाएगा और न किसी से रास्ता पूछना पड़ेगा। घाट पर पहुँचकर देखा तो पास एक बड़ी-सी नौका पाल उठाली हुई चली जा रही थी। तैरना मुझे आता है। नौका देखकर मैंने सोचा कि लपककर नौका का हाल पकड़ लूं और उसी के सहारे चुपचाप तैरती हुई चली जाऊँ। मैंने सुना था कि हमारे गाँव से कलकत्ता अधिक दूर नहीं है। लेकिन यह ठीक नही जानती कि कितनी दूर है। सोचा कि रात बीतते-बीतते वह नौका कलकत्ता जरूर पहुँच जायेगी। उस समय मैं भी उतर जाऊँगी।'

'मन मे यह निश्चय करके मैं पानी मे कूद पड़ी। तैरते-तैरते कुछ दूर गई। इतने मे मेरी साड़ी हाथ-पैर तथा सारे शरीर में लिपट गई। मैं प्रायः डूबने-सी लगी। तब बड़ी कठिनाई से वह साड़ी मैंने खोल डाली। लेकिन हाथ से छूटकर कहीं बह गई। इतने मे नाव पास आ गई। अब तक मेरे हाथ-पैर भी प्रायः शक्तिहीन हो चले थे। मैंने सोचा कि अब लौटकर मैं न जा सकूँगी। इससे नौका का सहारा लिया। नौका चलने लगी। मैं भी उसका हाल छोड़ने का साहस नहीं कर सकी। मुझे भय होने लगा कि इसे छोड़ने पर मैं कहीं डूब न जाऊँ। इस प्रकार नौका का हाल पकड़े-पकड़े मैं बहुत दूर तक चली आई। अब लौट कर जाने का भी कोई उपाय नहीं था।'

'मैंने स्थिर किया—प्रातः काल स्नान के निमित्त आई हुई किसी-न-किसी स्त्री से एक साड़ी माँग लूँगी। प्रातः काल स्नान के निमित्त बहुत-सी स्त्रियाँ आवेंगी। उन सब के पास एक-एक साड़ी होती ही है। उन्ही

मे से किसी से माँगूंगी। मुझे नग्न देखकर उन्हे दया आ जायगी। उसके बाद क्या हुआ, वह सब तुम जानते हो।'

सुरेन्द्रनाथ बड़ी देर तक मौन भाव से बैठे रहे। बाद को धीरे-धीरे मालती को अपने पास खीचकर उन्होंने कहा—'जिनके लिए तुमने इतना सब किया, उनके बारे में क्या तुमने अभी तक कोई उपाय नही किया ?'

सिर हिलाकर मालती ने कहा—'नही।'

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'यह तो मैं जानता हूँ। लेकिन जो मुँह खोलकर इतनी बात नहीं कह सकती उसने किस साहस के भरोसे पर ऐसा काम किया है ?'

मालती चुप होकर सुनने लगी।

'हर महीने कितने रुपये मिल जाने से उन लोगों का काम चल सकेगा?'

मालती—'बीस रुपये।'

सुरेन्द्रनाथ—'हर महीने पचास रुपये वहाँ भेज दिया करो।'

मालती—'तुम दोगे ?'

सुरेन्द्रनाथ हँसे। वे कहने लगे—'दूँगा। अगर चाहो तो और दूँगा।'

मन-ही-मन मालती ने कहा—'इतने दिनों के बाद मेरा जन्म सार्थक हुआ है।'

सुरेन्द्रनाथ—'इसके सिवा एक काम और करो। तुम मेरे साथ शादी कर लो। क्योकि नराधम होकर भी मैं इतने शुभ्र हृदय मे कलंक न लगने दूँगा।'

सुरेन्द्रनाथ की गोद में सिर रक्खे-ही-रक्खे अपना सिर हिलाकर मालती ने अस्फुट स्वर में कहा—'नही।'

सुरेन्द्रनाथ—'क्यो ? नही क्यों कर रही हो ? शायद तुम सोचती होगी कि ऐसा करने पर मेरी जाति चली जायगी। लेकिन मैं यहाँ का जमीदार हूँ। मेरे पास रुपये भी अधिक हैं। इससे मैं अपनी जाति बचा लूँगा। जिसके पास रुपये होते हैं उसकी जाति शीघ्र नही जाती।'

मालती—'लोक-निन्दा होगी।'

सुरेन्द्रनाथ—'होगी! लेकिन वह भी अधिक समय तक बनी न रहेगी।'

मालती—'वंश, कुल, मान-प्रतिष्ठा आदि ?'

सुरेन्द्रनाथ—'मालती ! कम-से-कम एक दिन के लिए तो इन सब को भूलने दो। जगत् मे आकर मैंने बहुत-सी वस्तुएँ प्राप्त की हैं लेकिन मैंने सुख कभी नही पाया। एक दिन के लिए मुझे यथार्थ सुखी होने दो।'

सुरेन्द्रनाथ की यह बात सुनकर मालती का अन्त.करण तक रो उठा। लेकिन उसने अपने आपको सँभाल लिया। धीरे-धीरे वह बोली—'तुम्हारे पास मैं सदा ही रहूँगी।'

सुरेन्द्रनाथ—'ईश्वर करें ऐसा ही हो। तुम सदा रहोगी, लेकिन मैं क्या तुम्हें इस तरह रख सकूंगा। तुमने तो ससार देखा नही, लेकिन मैंने देखा है। मैं जानता हूँ कि मैं विश्वासपात्र नही हूँ। जिस प्रेम में पड़कर तुम अपना सारा जीवन बिता दोगी, सम्भव है कि उसे छिन्न-भिन्न करके मैं बीच मे ही किसी दिन भाग जाऊँ। मालती, समय रहते हुए ही मुझे बाँध लो।'

मालती ने ध्यानपूर्वक सारी बातें सुनीं। बहुत दिनों के बाद फिर स्थिर होकर उसने एक बार विचार किया। बाद को दृढ कण्ठ से वह बोली—'मैंने तो बाँध लिया है। तुममें दम हो तो तोड़ डालो इस बंधन को। जिस बन्धन में मैंने तुम्हें बाँधा है उसके अतिरिक्त और किसी प्रकार के बन्धन की जरूरत नही है।'

सुरेन्द्रनाथ—'तुम्हारी निगाह में नही है, लेकिन मेरी निगाह में तो है।'

मालती—'होगा, लेकिन शादी नही हो सकती।'

सुरेन्द्रनाथ—'क्यों ? क्या विधवा के साथ नही करनी चाहिए ?'

मालती—'विधवा के साथ तो शादी करनी चाहिए, लेकिन वेश्या के साथ नही।'

एकाएक सुरेन्द्रनाथ की सारी देह काँप उठी। वे बोले—'तो क्या तुम वेश्या ही हो ?'

मालती—'और क्या हूँ ? जरा खुद ही तो सोचकर देखो।'

सुरेन्द्रनाथ—'छि: ! छि: ! ऐसी बात मुँह पर आने दो। मैं तुमसे कितना प्यार करता हूँ।'

मालती—'इसीलिए तो तुझे यह कहना पड़ा है। वर्ना शायद मैं शादी करने पर तैयार भी हो जाती।'

सुरेन्द्रनाथ—'मालती!'

मालती—'क्या?'

सुरेन्द्रनाथ—'क्या तुम सारी बातें साफ-साफ बतलाओगी?'

मालती—'बतलाऊंगी? तुम्हें छोडकर पहले कोई मेरे शरीर को छू तक नहीं सका है। लेकिन एक आदमी को अपना शरीर और हृदय, सभी कुछ मन-ही मन अर्पण कर चुकी थी।'

सुरेन्द्रनाथ—'तो फिर?'

मालती—'उससे मैंने बहुत आग्रहपूर्वक कहा था कि तुम मेरे साथ शादी कर लो।'

सुरेन्द्रनाथ—'तब?'

मालती—'जाति जाने के भय से उसने शादी नहीं की।'

सुरेन्द्रनाथ—'तो तुम अपना हृदय और प्राण किस तरह वापस लेने में समर्थ हुई हो?'

मालती—'जिस तरह उसने वापस कर दिया था।'

सुरेन्द्रनाथ—'तुमसे ऐसा करते बना है?'

कुछ देर तक चुप रहने के बाद मालती ने कहा—'पहले ही कह चुकी हूँ कि मैं वेश्या हूँ। वेश्याएँ सब कुछ कर सकती हैं।'

सुरेन्द्रनाथ—'ओह! कौन था वह आदमी? क्या वह सदानन्द था?'

मालती—'नहीं, वह एक दूसरा ही आदमी था?'

सुरेन्द्रनाथ—'तो इसका अर्थ यह है कि तुम आदमी पहचानना नहीं जानतीं। सदानन्द से क्यों नहीं कहा तुमने, वह तो तुमसे प्रेम करता है।'

एकाएक मालती के सारे शरीर में बिजली दौड़ गई। वह पागल-सा भोला-भाला मुख! मालती के स्मृति-पट पर उदित हो आया। वह दिन, जब कि एकाएक वर्षा होने लगी थी। वह दिन जब कि वह घाट से पानी भर कर आ रही थी, रास्ते में एकाएक पानी बरसने लगा और इस आशंका से कि कहीं भीगने पर बुखार न हो जावे, उसने सदानन्द के घर में आश्रय ग्रहण कर लिया था। उसे वह दिन भी याद हो आया जब कि उसने पहले-

पहल सदानन्द से आर्थिक सहायता प्राप्त की थी। बाद को किस तरह सदानन्द प्रतिदिन उसके हाथ पर कुछ-न-कुछ रुपया-पैसा रख दिया करता था। काशी-यात्रा के समय किस तरह वह तकिये के नीचे रुपयों की एक राशि छोड़ गया था, दुःख के समय वह किस प्रकार की हार्दिक सहानुभूति प्रकट किया करता था। इन सबके साथ-ही-साथ और भी कितनी बातें उसके स्मृति-पट पर उदय हो रही थीं। निमेषमात्र में ही कितनी बार नेत्र आँसुओं से भर उठे। लेकिन कहने से पहले ही मालती ने अपनी दोनो ही आँखें पोंछ डाली। सुरेन्द्रनाथ यह देख नहीं सके। कोच की बाँह पर टेक लगाये हुए वे दोनो आँख बन्द किये कोई और बात सोच रहे थे। बोले—'तब फिर ?'

मालती—'मैं कलकत्ता जा रही थी।'

सुरेन्द्रनाथ—'तब फिर ?'

मालती—'दया करके आपने अपने चरणों में जगह दे दी।'

ऊपर जिन प्रश्नों का उल्लेख हुआ है उन्हें अन्यमनस्क भाव से ही सुरेन्द्रनाथ ने अपने मुख से निकाला था। वे उठकर बैठ गये और बोले—'मालती, तुम रत्न हो। रत्न अगर अपवित्र जगह मे भी पड़ा हुआ मिल जाय तो उसे गले मे पहनना होता है।'

मालती—'यह किसने कहा ? जो रत्न एक आदमी गले मे धारण करता है उसी को दूसरा पैरों तक बाँध रखने मे घृणा का अनुभव करता है। तुम मुझे अपने चरणों में जगह दो। अगर मैं रत्न हूँ तो इसमें भी मैं अपना सौभाग्य ही मानूँगी।'

सुरेन्द्रनाथ थोड़ा-सा हँसे। वे बोले—'मालती, मैं समझता था कि तुम नासमझ हो। लेकिन ऐसी बात नहीं है।'

मालती भी थोड़ा-सा मुस्कराई। आज इतने दिनों के बाद किसी प्रकार उसके अधर-प्रदेश में हँसी की रेखा दिखाई पड़ी।

ठीक उसी समय बाहर से आकर दासी ने कहा—'बाबू साहब, अघोर बाबू की जोड़ी बाहर खड़ी है।'

सुरेन्द्रनाथ विस्मित हो उठे—'अघोर बाबू की जोड़ी ? लेकिन वे बगीचे वाले मकान मे क्यों आये हैं ?'

'उन्होंने कहला भेजा है कि बहुत आवश्यक काम है।' सुरेन्द्रनाथ उतावली के साथ उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—'मालती, तो अब मैं चलता हूँ।'

'अच्छी बात है। ये अघोर बाबू कौन हैं?'

'बाद को बतलाऊंगा।'

'अघोर बाबू से पूछना कि उन्होंने शादी कहाँ की है?'

सुरेन्द्रनाथ ने हँसकर कहा—'क्या तुमसे उनका परिचय है?'

'शायद कुछ-कुछ है।'

११

जन्म लेने पर मृत्यु का सामना करना ही पड़ता है। जो पत्थर आकाश की तरफ फेंका जाता है वह जमीन पर गिरे बिना रह नहीं सकता। हत्या का अपराध करने पर मनुष्य को फाँसी के तख्ते पर चढना पड़ता है और चोरी करने पर जेल में जाना पड़ता है। ठीक इसी तरह प्रेम करने पर रोना भी पड़ता है। संसार में जितने नियम प्रचलित हैं उनमे एक यह भी है। परन्तु इस नियम को किसने प्रचलित किया, यह मालूम नही है। सम्भव है कि प्रेमी के नेत्रों में ईश्वर की प्रेरणा से स्वत: प्रवृत्त होकर पानी आ जाता हो और उन्हें फोडकर बहने लगता हो। यह भी सम्भव है कि उसे रोने का शौक लगता हो, इसलिए आँसू बहने लगते हों या उसके सामने कोई मुसीबत का विषय उपस्थित होकर उसे रोने के लिए बाध्य कर देता हो। यह भी सम्भव है आँसू बहा-बहा कर हार्दिक प्रेम प्रदर्शित करने की प्रथा चिरकाल से चली आती हो और उसी कारण बाध्य होकर लोग आँसू बहाया करते हों। परन्तु इन सब में से कौन-सा कारण ठीक है, यह तो विशेष रूप से वे ही लोग बतला सकते हैं जिन्होंने प्रेम किया है और बाद को रोये हैं। मुझ अधर्मी को प्रेम का रस कभी मिला नहीं अन्यथा इच्छा थी कि प्रेम करके खूब जी भर कर रो लेते और इस बात की परीक्षा करते कि प्रेम के क्रन्दन में माधुर्य है या कटुता।

प्रेम में पड़ने का साहस मैं जो नही कर सका उसका एक कारण और है। इसके सम्बन्ध में बहुत-सी अत्यन्त ही चिन्ताजनक बातें सुनने में आई। मैंने सुना कि प्रेम के कारण कभी-कभी बहुत-सी हृदय-विदारक घटनाएँ हो जाया करती हैं। यह सुनने से मेरा शरीर कांप उठा। मैं तो कूदकर सौ हाथ पीछे चला गया। मन में आया कि इस युद्ध विग्रह के बीच में एकाएक मैं अपने आपको न पड़ने दूंगा। भाग्य अच्छे नही हैं। कोई आश्चर्य नहीं कि मैं जाऊँ तो परीक्षा करने के लिए और लौटना पड़े फटा हुआ हृदय लिए हुए। यह सोचकर इस प्रकार का साहस करने से मैंने त्यागपत्र दे दिया परन्तु मन में मेरे कौतूहल है, जहाँ कोई प्रेम करके रोता है, आँखें बचा-बचाकर देखता रहता हूँ। उसके भावी संकट की आशंका से मेरा मुख आभाहीन हो जाता है। उस पर भय और चिंता की रेखा उदित हो आती है। मैं उद्विग्न भाव से देखता रहता हूँ कि अब उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े होना ही चाहता है। परन्तु अन्त मे जब आँखें पोछकर उठ बैठता है और देखने मे पूर्ण रूप से स्वस्थ और सबल मालूम होता है तब मैं हतोत्साहित होकर लौट आता हूँ। मुझे इस बात की इच्छा नही होती कि उस व्यक्ति का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाय और मैं देखकर अपने नेत्रों को तृप्त करूँ। परन्तु उसे भग्न रूप में देखने की आकांक्षा भी इस जले हुए मन से निकालकर एकदम फेंक नही पाता हूँ। इसी इच्छा से प्रेरित होकर आज भी मालती के यहाँ आया हूँ। जो कुछ मैंने देखा है वह तो बाद को बतलाऊँगा, परन्तु जो सीखा है यह यह है कि मनुष्य प्रेम करके ईश्वर का समीपवर्ती मालती के समान हो उठता है। प्रेम के ये आँसू धरती पर नही गिरते, अपितु भगवान् के चरणों के समीप पहुँचकर कमल के समान खिल उठते है। इस प्रेम के ही कारण मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। वह योग्य या अयोग्य का विचार न करके दूसरे के चरणों में आत्म-बलिदान करता है। इस प्रकार से आत्म-त्याग के द्वारा अज्ञात रूप से भगवान की ही आराधना की जाती है, केवल उन्हीं की साधना की जाती है और साधना के कारण मनुष्य जीवन-मुक्त हो जाता है। प्रेम-विह्वल व्यक्ति को सम्भव है कि लोग पागल कहें, शायद मैंने भी इसी तरह की बात कितनी बार कही है; किन्तु उस समय यह ग्रहण नहीं कर सका कि इस

तरह के पागल संसार में बहुधा मिला नहीं करते, इस तरह का पागल बन सकने पर भी इस तुच्छ जीवन का बहुत कुछ कार्य संपादित हो जाता है।

सुरेन्द्रनाथ के चले जाने पर मालती भूमि पर लोट गई। वह कितना रोई, यह न बतलाऊँगा। शायद वह सोच रही थी कि उस बाल्यकाल के प्रेम और आज के इस प्रेम में कितना अन्तर है। मालती ने अपनी इच्छाओं का परित्याग करके प्रेम किया था। उस प्रेम में अपरिमित कृतज्ञता का भी सम्मिश्रण था। वह सोच रही थी—'भाड़ में जाय आत्म-सुख की इच्छा।'—वह अनुभव करने लगी कि उनके लिए मैं हँसते-हँसते प्राण तक दे सकती हूँ।

मालती बोली—'तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हो। तुम्हारे बालों की एक लट के लिए मैं प्राण-त्याग कर सकती हूँ। क्या तुम मेरे कारण कलंकित होओगे ? केवल मेरे कारण लोग तुम्हें दस तरह की बातें कहेंगे और तुम सुनोगे ? मैं अज्ञात कुलशीला हूँ, कोई मुझे जानता नहीं, कोई मुझे पहचानता नहीं। मेरे लिए कोई लज्जा की बात नहीं है। लेकिन तुम महान् हो। तुम्हारे कलंक—तुम्हारी लज्जा की बात सारे संसार में फैल जायगी। लोग कहेंगे कि तुमने वेश्या के साथ विवाह किया है। समाज में तुम नीची निगाह से देखे जाओगे। इससे तुम्हारे हृदय में वेदना हुए बिना न रहेगी। मैं ऐसा न होने दूँगी।' सिर हिलाकर मालती ने कहा—'नहीं, यह न होने पावेगा, ऐसा मैं कभी न होने दूँगी।'

स्थिर होने पर मालती उठकर बैठ गई। आँसू पोंछकर हाथ जोड़ कर बोली - 'भगवान, तुम जानते हो कि इस जीवन में मैंने कितने पाप किये हैं, कितना अपराध किया है ! किन्तु वह दिन भूलता नहीं। संसार में मेरे लिए और स्थान नहीं है। परन्तु जब कभी वह दिन आए, अगर किसी दिन स्वामी का स्नेह खोना पड़े, तो उस दिन मुझे ले लेना, पतिता होने पर भी चरणों में स्थान दे देना।'

उस दिन मालती सारी रात वहीं पड़ी रही। सवेरा हुआ, दोपहर हुआ, सांझ हुई, किन्तु सुरेन्द्रनाथ लौटे नहीं। दिन भर वह उत्सुकता-भरी दृष्टि से रास्ते की ओर ताकती रही। अन्त में सुरेन्द्रनाथ आये। उस समय रात बहुत अधिक बीत चुकी थी। उनके मुख पर उस समय

सदा की अपेक्षा कही अधिक मलिनता थी, कही-कही अधिक रूखापन था। यह देखकर मालती को कुछ सन्देह हुआ। परन्तु कमरे में पैर रखते ही मुस्कराते हुए बोले—'मालती, शायद तू दिन भर रास्ता ही ताकती रही है?'

मालती का मुख लाल हो उठा। उसने कोई उत्तर नही दिया।

'करूँ क्या मैं? एक दिन भी तो ऐसा नहीं बीतता जब कोई-न-कोई मुकदमा न हो। जिसके पास जितना धन-वैभव होता है उतना ही उसे दुख भी मिलता है।'

मालती ने कहा—'मुकदमे क्यों लड़ा करते हो?'

सुरेन्द्रनाथ हँस पडे। वे बोले—'क्यों लड़ता हूँ, यह बाद को समझ सकोगी। पहले तुम मेरी हो जाओ, हर एक वस्तु को अपनी समझना सीख लो, तब तुम्हारी समझ में आएगी कि मैं मुकदमा क्यों लडता हूँ?'

मालती मौन होकर कितनी ही बातो पर विचार करने लगी।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'मालती, क्या तुमने उस विषय पर विचार किया है?'

मालती—'किस बात पर?'

सुरेन्द्रनाथ—'किस बात पर? कल की बात आज ही भूल गई?'

मालती—'नही, कल की बात मैं भूली नही। वह याद है मुझे।'

सुरेन्द्रनाथ—'याद तो होगी ही। लेकिन क्या तुमने उस पर कुछ विचार भी किया है?'

मालती—'हाँ, विचार किया है। तुम्हारे साथ मेरा विवाह किसी भी हालत में नही हो सकता।'

सुरेन्द्रनाथ—'हो नही सकता? यह कैसी बात कह रही हो तुम?'

मालती—'इसका कारण तो मैं पहले ही बता चुकी हूँ।'

सुरेन्द्रनाथ—'तुम बता चुकी हो मेरा सिर। विवाह मैं करके ही रहूँगा।'

मालती—'मैं होने न दूँगी। एक मास से अधिक हुआ मुझे यहाँ आये। अगर तुम्हारी इतनी अधिक इच्छा थी तो पहले ही क्यो नही कर लिया?

अब तो सभी लोगों ने मालूम कर लिया है कि जयावती की मृत्यु हो जाने पर उसकी जगह पर एक दूसरी वेश्या कलकत्ते से ले आये हो।'

सुरेन्द्रनाथ कुछ असमञ्जस में पड़ गये। उन्होंने कहा—'मैं भी यही सोच रहा था। परन्तु यह कोई बात नहीं है। मैं ...।'

मालती—'उस हालत में मैं ज़हर खा लूँगी।'

सुरेन्द्रनाथ ने जरा-सा हँसकर कहा—'यह तो बाद में सोचने की बात है। अभी मैं अधिक-से-अधिक सात दिन के अन्दर सारा प्रबन्ध किये लेता हूँ।'

मालती—'तो सात दिन के भीतर ही तुम मुझे न देख पाओगे।'

सुरेन्द्रनाथ विस्मित भाव से कुछ क्षण तक मालती के मुँह की तरफ देखते रह गये। बाद को उन्होंने कहा—'कहाँ जाओगी?'

मालती—'जहाँ इच्छा होगी मेरी।'

सुरेन्द्रनाथ—'आत्महत्या करोगी?'

मालती—'आत्महत्या मैं न करूँगी, क्योंकि यह कार्य मेरे किये न हो सकेगा। परन्तु जिस रास्ते से मैं चली थी उसी रास्ते से फिर चली जाऊँगी।'

'तो भी बन्धन में न पड़ोगी?'

'नहीं।'

इस प्रकार का दृढ़ स्वर सुनकर सुरेन्द्रनाथ ने यह बात भली-भाँति समझ ली कि मालती झूठ नहीं कह रही है। कुछ देर तक तो सोचते रहे, बाद को जरा-सा हँसकर बोले—'तुम क्या करोगी? यह तुम लोगों का अपना धर्म है। अच्छी बात है, यही सही।'

सुरेन्द्रनाथ की इस बात के उत्तर में मालती बोली नहीं। मुँह खोले बिना ही वह तिरस्कार सहकर रह गई। कुछ देर तक किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकली। बाद को सुरेन्द्रनाथ बोले—'घर के लिये रुपये तुमने भेज दिये हैं न?'

मालती उस समय रो रही थी। सिर हिलाकर उसने सूचित किया—'नहीं, रुपये नहीं भेजे गये।'

सुरेन्द्रनाथ—'भेजे क्यों नहीं गये?'

मालती चुप ही रही। अब सुरेन्द्रनाथ ने समझ लिया कि वह रो रही है। उन्होंने कहा—'क्यों ? क्या हाथ में रुपये नहीं थे ?'

मालती—'नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ—'कुछ भी नहीं था ?'

मालती—'नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ—'तुम्हें यहाँ आये इतने दिन हो गये, अपने पास में कुछ कर नहीं सकी हो ?'

मालती रोने लगी, वह कुछ बोली नहीं। सुरेन्द्रनाथ ने यह प्रश्न उससे बेकार किया था। उन्हें स्वयं यह अच्छी तरह मालूम था कि उसके पास कुछ नहीं है। जरा देर के बाद वे हाथ पकड़कर उसे अपने पास ले आये। तब उसे बगल में बैठाकर स्नेह-भरे स्वर में वे बोले—इस तरह शोक के मारे तुम मूरत बनाये रहोगी तो भला मैं क्या करूँगा ? एक कपड़ा न पहनोगी, शरीर पर एक अलंकार न धारण करोगी, तुम्हें किस वस्तु की जरूरत है, कौन-सी चीज तुम पसन्द करती हो, ये सब बातें मुँह खोलकर कभी बतलाओगी नहीं तो मैं करूँगा क्या ?' इतना कहकर सुरेन्द्रनाथ ने जेब से नोटों का एक बंडल निकाला और मालती के हाथ पर उसे रखकर कहा—'इसे तुम रख लो। इसमें से जितना चाहो उतना घर भेज दो, बाकी अपने पास रखे रहो। इच्छानुसार तुम इसे खर्च करना, बीच-बीच में मुझसे और भी माँग लिया करना।' आखिर में जरा हँसकर वे बोले—'अब रुपये जोडना भी सीखो।'

मालती मौन होकर सुनती रही।

सुरेन्द्रनाथ—'भूलना नहीं, आज ही रुपये भेज देना।'

मालती—'किस तरह भेजूँ ?'

सुरेन्द्रनाथ—'रजिस्ट्री करके।'

मालती—'मुझसे यह न होगा। तुम और किसी के नाम से भिजवा देना।'

सुरेन्द्रनाथ—'क्यों, क्या इस बात से डरती हो कि कहीं पकड़ी न जाओ ?'

मालती—'हाँ।'

सुरेन्द्रनाथ—'अच्छी बात है। मेरे वकील अघोर बाबू से कह देना। वे कलकत्ता में रहते हैं, वहीं से भेज देंगे।'

मालती—'यह ठीक है। लेकिन अगर कोई उनके पास पता लगाने के लिए आये तो वे क्या कहेंगे?'

सुरेन्द्रनाथ—'जो मुनासिब समझेंगे, वही जवाब दे देंगे।'

मालती—'नहीं! उन्हें रोक देना कि वे किसी भी हालत में मेरा नाम प्रकट न करें।'

सुरेन्द्रनाथ—'अच्छा, ऐसा ही होगा।'

१२

जयावती तो मर गई किन्तु उसकी माँ जिन्दा थी। नारायणपुर से उत्तर की तरफ कुछ दूरी पर वासपुर नामक एक गाँव में उसका घर था। वहीं जयावती और उसकी माँ रहा करती थीं। उन माँ-बेटी के भोजन-वस्त्र की व्यवस्था किस उद्यम से हो जाया करती थी, यह वे ही जानती थीं और जानते थे, वासपुर के दो-चार कुत्सित आचरण के लोग। परन्तु यह जानने से हम लोगों को कोई लाभ नहीं है। जानने की उतनी इच्छा भी नहीं है। हटाओ यह बात।

जयावती उसी प्रकार वासपुर में कुछ दिनों तक अपना निर्वाह करती रही। आखिर में पता नहीं किस तरकीब से नारायणपुर के जमींदार साहब की स्वयं अपने रहने की कोठी के एक कोने में स्थान प्राप्त कर लिया। जब उसे स्थान मिल गया तब उसकी माँ भी आ गई। तब माँ-बेटी ने मिलकर अपनी गृहस्थी बाँध ली। परन्तु जयावती की माँ के भाग्य अच्छे नहीं थे, इससे पाँच महीने भी न बीत पाये कि माँ-बेटी में कलह आरम्भ हो गया। कुछ दिनों के बाद यह स्थिति आ गई कि दोनों समय बाकायदा चिल्लाकर परस्पर एक-दूसरे को अभागा-अभागिनी तथा शीघ्र ही इस संसार के बन्धन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए विधाता प्रार्थना किए बिना पानी तक नहीं पिया करती थीं।

इस हालत में भी दिन बीतते ही गए। परस्पर लड़ते-झगड़ते छः

महीने उन दोनों ने और बिता दिए। अन्त में जयावती की माँ को राज-भवन में निवास करने की लालसा का परित्याग करना पड़ा। अपना जो पुराना घर छोड़कर वह आई थी उसी में जाकर उसने फिर डेरा डाला। वहाँ से जाने के लिए सम्भवतः उसे नितान्त ही बाध्य किया गया था। बात यह है कि जिस समय वह राजप्रासाद से निकल अपने निवास स्थान की तरफ चली थी उस समय बहुत ही कठोर होकर छाती पीट रही थी। साथ ही जयावती भी काफी जोर-जोर से उसकी अकल्याण-कामना प्रकट कर रही थी। यह देखकर किसी के भी हृदय में यह धारणा नहीं उत्पन्न हो सकती थी इसने स्वेच्छा से अपने घर की राह ली है।

जिस दिन जयावती की माँ कोठी से निकली थी, जमींदार सुरेन्द्रनाथ ने सब नौकरों से कह दिया था कि यह हरामजादी अब किसी तरह भी फाटक के भीतर पैर न रखने पाए। लेकिन उनकी इस आज्ञा का कोई फल न हुआ। जयावती की माँ का आना-जाना बराबर लगा ही रहा। वह प्रायः आया करती और भीतर तक पहुँच जाती, किन्तु आना उसका हुआ करता बेकार ही। आकर वह तरह-तरह की गालियाँ बकती, जयावती को शाप देती, बाद को उसको भी गालियाँ सुनने तथा उसके द्वारा अभिशप्त होने पर क्रोध में आकर जोर-जोर से छाती पीटती, माथे के बाल नोचती और आखिर में जमींदार के किसी नौकर से झाड़ प्राप्त करके उसे कासपुर को लौट जाना पड़ता। परन्तु हर एक महीने या दो महीने के बाद ऐसा होता अवश्य। सम्भव है कि ऐसा करके भीतर-ही-भीतर वह कुछ लाभ भी उठा लिया करती थी अन्यथा केवल गालियाँ सुनने तथा गला पकड़कर निकाली जाने के लिए इतनी परिश्रम करके वह इतनी दूर तक आती नहीं। वह जैसे चरित्र की स्त्री थी उसके कारण तो वह सब कहीं कम क्लेश सहन करके उपार्जित कर सकती थी। जाने दो यह बात। इसका यह भी एक कारण हो सकता है कि वह कन्या रत्न से अत्यधिक प्यार किया करती थी। इस कारण विपथ-गामिनी होने पर भी वह माया का बन्धन तोड़ नहीं पाती थी, बेटी को देखने के लिए आ ही जाया करती थी।

समय बराबर बीतता रहा। अन्त में एक दिन जयावती की माँ के

कानों तक वह सम्वाद पहुँचा कि जयावती ने गंगा में समाधि लेकर अपनी इहलौकिक लीला का संवरण कर लिया है। इस सम्वाद का पहुँचना था कि अपने ऊँचे गले के क्रन्दन से उसने पास-पडोस में रहने वाले आधे आदमियों को तो दरवाजे के सामने इकट्ठा कर ही लिया।

दूसरे दिन रात्रि का अन्धकार दूर होते ही जया की माँ ने नारायणपुर की राह ली। क्रमशः वह नारायणपुर पहुँच गई। वही सड़क थी, वे ही गलियां थी, वे ही पेड़ों की कतारें थीं। सारी वस्तुएँ उससे परिचित थी, जया की माँ के मन में यह बात आई कि इसी रास्ते से होकर मैं जाया करती थी और बाद को इसी से होकर छाती पीटते-पीटते लौट आया करती थी। जिससे मेरा झगड़ा हुआ करता था वह अब संसार में रही नही। इससे वैसा झगड़ा अब कभी न हो सकेगा। उस तरह छाती भी अब नहीं पीट पाऊंगी।

ये सब बातें सोचते-सोचते जयावती की माँ के मन की वेदना बढ़कर अत्यधिक हो गई। उसके कारण वह दुःखी होकर हजार गुना अधिक चिल्लाहट से उसे शान्त करती हुई चली जा रही थी। जिसके दरवाजे पर से होकर वह निकलती, उसे सैकड़ों काम छोड़कर भी कम-से-कम एक बार खिड़की के पास आना ही पड़ता। इस तरह चलते-चलते वह सुरेन्द्र बाबू के महल के सामने पहुँच गई। जया की कितनी स्मृतियाँ उससे जड़ित थीं। जया की माँ ने अब अपने रुदन के वेग में और भी कई गुना अधिक वृद्धि कर ली थी। सदर फाटक से पहले कभी घुसने नही पाती थी। बात यह थी कि बाबू साहब ने इसके लिए मना ही कर दी थी। परन्तु आज यह इस तरह शेरनी की तरह दौड़ती हुई घुस आई कि चौकीदारों में से किसी को भी रोकने की हिम्मत नही हो सकी। प्रायः वे सभी दस हाथ पीछे हट गये।

उस समय सुरेन्द्र बाबू भोजन से निवृत्त होकर विश्राम करने का प्रयत्न कर रहे थे। कानों मे चिल्लाहट पहुँचते ही सुरेन्द्रनाथ ने समझ लिया कि जया की माँ तूफान के समान ऊपर चढ़ आई है। उनके पास पहुँचते ही वह झटपट प्रार्थना कर बैठी कि मेरी जयावती को तुम मुझे वापस कर दो। उसके बाद उसने सैकड़ों प्रकार की प्रार्थनाएँ की, सैकड़ों प्रकार की

इच्छाएँ प्रकट कीं, सैंकड़ों प्रकार के उलाहने दिये और सैंकड़ों प्रकार के जवाब तलब किये। इस प्रकार तरह-तरह से उसने सुरेन्द्रनाथ को परेशान कर डाला। कभी वह माथा पीटती, कभी छाती पीटती और कभी सिर के बाल उखाड़ती। इस प्रकार उसने और भी कैसे-कैसे कृत्य किये, इसका विस्तार-पूर्वक वर्णन करने की क्षमता लेखक में नहीं है।

अन्त में जया की माँ ने यही कहकर इस संघर्ष का क्रियाकलाप समाप्त किया कि मेरे पास अब एक पैसा भी नहीं है, जिसके द्वारा मैं अपनी जीविका चला सकूँ। अगर आप अब कृपा न करेंगे तो मुझे भूखों मरना पड़ेगा। उस अवस्था में सम्भव है कि यहीं पर गले में फाँसी लगाकर मैं उसी धाम मे चली जाऊँ, जहाँ जयावती चली गई है।

सुरेन्द्रबाबू ने कहा—'जो होना था वह तो हो गया। अब यह बतलाओ कि किस प्रकार की व्यवस्था से तुम्हारा निर्वाह हो सकेगा?'

आँखें पोंछकर जया की माँ बोली—'भैया, थोड़े में ही मेरा निर्वाह हो जायगा। मैं विधवा हूँ। मेरे कोई है नहीं। खर्च ही क्या है मेरा?'

सुरेन्द्रनाथ—'फिर भी कितने रुपए चाहती हो तुम?'

जया की माँ—'हर महीने पन्द्रह रुपये मिलते रहने पर मेरा निर्वाह हो जायगा।'

सुरेन्द्रनाथ—'इतने रुपये मिलते रहेंगे तुम्हें। जब तक तुम जीवित रहो, हर महीने आकर कचहरी से ये रुपये ले जाया करो।'

तब जया की माँ ने बहुत-बहुत आशीर्वाद दिये, बहुत-सी संतोषप्रद बातें कहीं और वहाँ से उसने प्रस्थान किया।

सुरेन्द्रनाथ से विदा लेकर जया की माँ सीधे घर की ओर चली।

जयावती के स्थान पर अधिकार करने वाली युवती का हाल सुनकर वृद्धा के मन में एकबारगी जो उत्तेजना का भाव उत्पन्न हुआ उससे उसे इस बात का ध्यान न रहा कि मैं कैसे स्थान में हूँ और मैं जिस प्रकार का आचरण करने जा रही हूँ, उसके लिए यह उपयुक्त है या नहीं। वह उक्त युवती को तरह-तरह की गालियाँ देने लगी, साथ ही उसे जी भरकर कोसने लगी। उसके क्रन्दन की ध्वनि भी क्रमशः बढ़ने लगी। अपने अदम्य उत्साह में नवीनता लाकर वह फिर माथा पीटने लगी, सिर के बाल

रख हुए थी, और छाती को खूब जोर से ऐंठे थी। [illegible] और [illegible] के [illegible] करते थे। [illegible] आतुर होकर [illegible] ने उसे बहुत [illegible] इस बात की भी [illegible] कि वह [illegible] यदि [illegible] है तो तुम्हें [illegible] देने की [illegible] है [illegible] ! परन्तु जया की माँ ने बड़ी देर तक इस तरह बातों की ओर ध्यान नहीं दिया। अन्त में [illegible] होकर उस [illegible] ने एक [illegible] उत्तर देकर [illegible] जिसके द्वारा उन्हें जया की माँ से बड़ी कठिनाई से छुटकारा मिला।

महल में आकर जया की माँ [illegible] मन्दिर की ओर रवाना हुई। [illegible] कौतुक उमड़ आया था। उसके मन में यह बात उठने लगी कि इस दुष्टा ने मेरी पुत्री को दूर करके उसके स्थान पर अधिकार कर लिया है। बकते-बकते उसने उस बगीचे वाले महल में प्रवेश किया। जो दासी उसकी दृष्टि के सम्मुख पड़ी उसकी तरफ आँखें लाल-लाल करके ताकती हुई वह बोली—'कहाँ है वह डाइन ?'

बेचारी दासी अभी नई-नई आई थी वहाँ। डर के मारे पीछे हटकर वह बोली—'यहाँ !'

जया की माँ ने जैसा प्रश्न किया था, वैसा ही उत्तर भी उसे मिला। दासी जिस प्रकार प्रश्न का आशय नहीं समझ पाई थी, उसी प्रकार जया की माँ उत्तर का भी आशय नहीं समझ पाई। दासी की तरफ पहले की ही तरह एक बार और देखकर वह बोली—'कहाँ है ?'

दासी ने अँगुली हिलाकर एक बार इच्छानुसार किसी दिशा की ओर संकेत कर दिया और वहाँ से वह सरक गई। इधर जया की माँ सीढ़ी से ऊपर चढ़ गई। वहाँ घूम-घूमकर एक-एक कमरा देखने लगी। किसी से भी उसकी भेंट नहीं हुई। परन्तु कमरों की सजावट तथा उनमें रक्खी हुई बहुमूल्य सामग्रियों को देखकर वह चकित हो गई। उसने मन-ही-मन कहा—'अहा, कैसी अनुपम शोभा है यहाँ की ! कितनी उत्तम-उत्तम वस्तुएँ रक्खी हुई हैं यहाँ पर ! पहले भी तो मैं सुरेन्द्रबाबू के यहाँ आई हूँ और काफी समय तक रह भी चुकी हूँ, परन्तु इस प्रकार की सजावट, इस तरह का ठाट-बाट तो कभी नहीं देखने में आया। जितना ही वह देखती, ...

ही वह क्रुद्ध नागिन की तरह फुफकारने लगती। उसके मन में यह बात आने लगी कि ये सभी वस्तुएँ जयावती की होतीं या कौन जाने, किसी समय स्वयं मेरी ही होतीं। इसी प्रकार का तर्क-वितर्क करते-करते एक स्त्री दिखाई पड़ी।

जया की माँ ने उस स्त्री को पीछे से देखा और उसके सम्बन्ध में अपने मन में यह धारणा बनाई कि यह कोई परिचारिका है। उसे पुकार कर उसने कहा—'क्यों जी, तुम्हारी मालकिन कहाँ हैं ?'

अस्वाभाविक कठोर वचन सुनकर उस स्त्री ने घूमकर देखा। जया की माँ ने देखा कि वह बहुत साधारण वस्त्र पहने हुए है। शरीर पर उसके नाममात्र को भी आभूषण नहीं है। लेकिन मुख देखकर वह ठमककर खड़ी हो गई। उसका कर्कश कण्ठ-स्वर नरम हो गया। वह बोली—'तुम कौन हो जी ?'

'मैं यहीं रहती हूँ। आप बैठिए।'

जया की माँ—'कितने दिनों से तुम आई हो यहाँ ?'

स्त्री—'एक महीने से प्राय: अधिक हुआ।'

जया की माँ—'तुम्हारी मालकिन कहाँ है ? शायद तुम उन्हीं के साथ आई हो ?'

स्त्री ने सिर हिलाकर कहा—'उनसे तुम्हें कुछ काम है क्या ?'

जया की माँ—'काम मुझे बहुत अधिक है। आज मैं उस हरामजादी डाइन का सिर चबाकर खाये बिना न रहूँगी।' यह बात कहते-कहते फिर उसका पहले का-सा भाव हो गया। वही रूखी-सूखी मुख की कान्ति, नेत्रों में वही अमानुषिक भाव, वह ठीक पहले जैसा ही हो गई। बहुत ही कर्कश स्वर में वह बोली—'तू जानती है, मैं कौन हूँ ? मैं हूँ जयावती की माँ। मुझे देश भर के लोग जानते हैं। हरामजादी डाइन ने मेरी बेटी को खा लिया है। आज मैं उसे खाऊँगी—खाऊँगी।'

वह स्त्री साँस बन्द किए हुए यह अलौकिक लीला देखने लगी। 'अरी हरामजादी, तुझे मैं खाऊँगी। (छाती पीटती है) अरी अभागी, सैंकड़ों को ग्रास कर जाने वाली, हरजाई, डाइन (सिर के बाल उखाड़ती है) तुझे मैं खाऊँगी। खाकर रहूँगी—माँ काली के चरणों के पास तेरा

बलिदान करूँगी। तेरे हृदय का रक्त उनके चरणों में अर्पित करूँगी। (भूमि पर सिर पटकती है) इसी तरह, (दांत पीसती है) कहो, कहाँ है वह, कहाँ है ?'

जिसे लक्ष्य करके ये सब काण्ड किए जा रहे थे वह सामने ही बैठी थी, लेकिन जया की माँ यह जानती नहीं थी। अगर वह जान पाती तो कदाचित् उस दिन कोई अनहोनी बात होकर रहती।

पास जाकर मालती ने उसका हाथ पकड़ लिया। धीरे-धीरे वह बोली—'शान्त होओ।'

'मैं शान्त होऊँ ? तू अभागी यह बात कहने वाली कौन है ? मेरी लड़की को खा लिया है उस डाइन ने और मैं शान्त होकर रहूँगी ?' (जया की माँ फिर भूमि पर माथा पटकने लगी।)

मालती समझ गई कि कमरे में अगर इतना मोटा गलीचा न बिछा होता तो आज जया की माँ समूचा माथा लेकर घर लौट न पाती। वह बोली—'आज वे यहाँ नही हैं ?'

मालती—'नहीं।'

जया की माँ—'लेकिन एक पग भी मैं यहाँ से हटूँगी नहीं। देखूँगी हरामजादी को आज। उसे खा लूँगी, तब जाऊँगी।'

मुस्कराती हुई मालती बोली—'जाइएगा क्यो ? आराम से यहीं रहिए। लेकिन देर बहुत अधिक हो गई है। खाना-पीना तो अभी तक कुछ हुआ नही आपका ?'

जया की माँ—'खाना-पीना ? यह सब तभी एकदम करूँगी।'

मालती—'अहा, पुत्री का शोक ! माता के हृदय की कैसी अवस्था होती है, यह मैं जानती हूँ।'

जया की माँ कुछ नरम पड़ी। वह बोली—'तुम्हीं जरा सोचकर देखो बेटी !'

मालती—'यह क्या आप कहेंगी, तब समझूँगी मैं ? लेकिन अब आप कर ही क्या सकती हैं ? मुंह में जरा-सा अन्न डालना ही पड़ता है। यह पापी पेट क्या मानता है ?'

जया की माँ—'यह बात तो सच है बेटी !'

मालती—'इसी से तो कहती हूँ कि यहीं कोई व्यवस्था कर दूं?'

जया की माँ—'कर देगी, बहुत अच्छा होगा बेटी।'

मालती—'अहा! जया दीदी कितनी चर्चा किया करती थीं आपकी।'

जया की माँ—'मेरी चर्चा किया करती थी? अवश्य करती रही होगी। बेटी, देखा था तूने उसे?'

मालती—'अहा! कितने दिन साथ-साथ रही हम दोनों! देखा मैंने उन्हें?'

जया की माँ—'तो शायद तू उसके साथ थी?'

मालती—'हाँ, वे ही मुझे मेरे निवास-स्थान से यहाँ लिवा लाई थीं। मुझसे ज्यादा आपकी चर्चा किया करती थी।'

जया की माँ—'ऐसा तो वह करती ही रही होगी।'

मालती—'स्वभाव उनका बहुत ही अच्छा था।'

जया की माँ—'शायद चुड़ैल ने बाबू साहब कोई को वैसी दवा दे दी जिससे वे बिलकुल मुग्ध हो उठे हैं।'

मालती—'सुनती तो मैं भी हूँ।'

जया की माँ—'किन्तु आज मैं उसकी यह सारी धोखेबाजी मिट्टी में मिला दूंगी।'

मालती—'अच्छा तो है। जैसी है वह चुड़ैल, उसे वैसा ही पाठ पढ़ा देना, तब जाना।'

जया की माँ—'अच्छा, जन्त्र-मंत्र भी कुछ जानती है वह चुड़ैल?'

मालती—'सुनती तो हूँ कि कामाख्या में सीखकर आई है वह।'

जया की माँ—'कब तक आएगी?'

मालती—'दोपहर तक।'

खिड़की से ताककर जया की माँ ने बाहर की तरफ देखा। उसे मालूम हुआ कि दोपहर होने मे अब अधिक देर नहीं है। इससे जरा इधर-उधर करके वह बोली—'आज तो मुझे बहुत से काम करने है, इससे इस समय जा रही हूँ; कल आऊँगी।' यह कहकर जयावती की माँ उठकर खड़ी हो गई।

मालती—'नहीं, नहीं, आज यहां खा-पी लो, तब जाना।'

जया की माँ—'तो झटपट ले आ बेटी ! अच्छा, नाम क्या है तेरा ?'

'मेरा नाम है मालती ।'

जया की माँ—'अहा ! कितना मधुर नाम है !'

अब नीचे आकर जया की माँ ने झटपट कुछ खा लिया। मालती भी पास ही बैठी हुई थी। वह देख रही थी कि बुढ़िया निश्चिन्त होकर भोजन नहीं कर रही है।

मालती—'एक बात अभी आपको बतलाने की है। जया दीदी से मैंने दस रुपये उधार लिए थे। वे तो अब हैं नहीं। इससे आप अगर मुझे ऋण से मुक्त कर देतीं...।'

जया की माँ यह बात अच्छी तरह समझ नहीं सकी। वह बोली—'क्या करूँ ?'

मालती - 'वे दस रुपये आप ले लें।'

जया की माँ—'मुझे दोगी तुम ?'

मालती—'हाँ।'

ऊपर से दस रुपये लाकर मालती ने जया की माँ के हाथ पर रख दिये।

जया की माँ देर तक मालती के मुँह की ओर देखती रही। बाद को धीरे-धीरे बोली—'बेटी, तुम निःसन्देह किसी भले घर की लड़की हो ?'

धीरे से हँसकर मालती बोली—'हम बहुत दुःखी हैं।'

जया की माँ के नेत्रों के कोर में जरा-सा आँसू आ गया। वह बोली—'हो सकता है, लेकिन यदि तुम भले घर की लड़की न होतीं तो ऐसा मधुर व्यवहार कैसे होता तुम्हारा ! बात मैं बिलकुल सच कह रही हूँ। मेरी जया के हाथ में इतने रुपये थे लेकिन कभी न सोचा उसने कि ये मेरी माँ हैं, इकट्ठे दस रुपये रख दूँ इनके हाथ पर।'—इतना कहकर उसने आँखों की कोर पोंछ डाली।

मालती—'हम लोग तो दुखिया हैं। लेकिन धर्म का खयाल तो करना ही पड़ता है।'

जया की माँ—'धर्म तो निःसन्देह बहुत बड़ी वस्तु है, लेकिन कितने आदमी हैं उसकी तरफ ध्यान देने वाले ?'

मालती—'अच्छा, तो क्या तुम कल आओगी ?'

जया की माँ—'हाँ आऊँगी।'

मालती—'तो क्या अपनी मालकिन से तुम्हारी चर्चा कर दूँ आज ?'

'हाँ ! नही, नही, अभी मेरी चर्चा करने की आवश्यकता नही।' बहुत ही खिन्न भाव से जया की माँ ने कहा—'तो अब मैं चलती हूँ, कभी-कभी तुम्हारे पास आती रहूँगी।'

मालती—'अच्छी बात है।'

१३

यह बातें सुनकर सुरेन्द्रनाथ हँसे और बोले—'तो तुमसे खूब झगड़ा हो गया ?'

मालती बोली—'झगडा क्यों होने लगा, अपितु खूब मेल हो गया।'

सुरेन्द्रनाथ—'लेकिन अपनी जो कन्या थी उससे कभी नही बनती थी उसकी। हमेशा झगड़ा होता रहता था।'

मालती—'यह तो मैंने सुना है।'

सुरेन्द्रनाथ—'यह किस तरह ?'

मालती—'मानसिक वेदना के कारण उसने स्वयं कुछ-कुछ बतलाया है।' परन्तु उसकी वेदना का कारण क्या है, यह मालती ने खोलकर नही बतलाया।

सुरेन्द्रनाथ—'पहले शायद घर मे पैर रखते हो उसने तुम्हें खूब गालियाँ दी थी।'

मालती हँसकर बोली—'मुझे उसने कुछ नही कहा—जिस डाइन को तुम कलकत्ता मे ले आये हो उसे ही उसने गालियाँ दी हैं।'

सुरेन्द्रनाथ—'वह डाइन तो तुम्ही हो।'

मालती—'मैं क्यों हूँ ? मैं तो कलकत्ता से आई नही हूँ।'

सुरेन्द्रनाथ—'आई कही से भी होओ, लेकिन हो तुम्ही।'

मालती—'मुझे तो वह पहचान भी नही सकी। उसने सोचा था कि यह कोई दासी होगी।'

जरा-सा दु:ख का भाव प्रकट करते हुए सुरेन्द्रनाथ बोले—'इसके सिवा

कोई और क्या समझ सकता है !'

मालती—'इसी कारण आज मेरी रक्षा भी हो गई, अपितु आज वह कदाचित् मुझे जीती न छोड़ती।'

सुरेन्द्रनाथ—'तो क्या मार डालती ?'

मालती—'मालूम तो यही पड़ता था।'

सुरेन्द्रनाथ—'तो फिर ?'

मालती—'मैंने कह दिया कि वह चुड़ैल आज यहाँ नहीं है। तब वह बोली—आने पर उसे मैं खाऊँगी।'

सुरेन्द्रनाथ हँसने लगे।

मालती फिर बोली—'तब उसने मुझसे पूछा कि क्या उसने बाबू को कोई बूटी पिला रक्खी है। मैंने कहा—मालूम तो ऐसा ही पड़ता है। अन्यथा क्या वजह है कि उसके कहने से ही उठते हैं और उसी के कहने से बैठते हैं ?'

सुरेन्द्रनाथ—'तो क्या सचमुच मेरा यह हाल है ?'

मालती—'इसमें भी क्या कोई सन्देह है ?'

सुरेन्द्रनाथ—'क्या फिर कभी न आएगी वह यहाँ ?'

मालती—'आएगी तो। किन्तु अब वह तुम्हारी उस डाइन के पास न आवेगी, लेकिन मेरे पास आएगी।'

सुरेन्द्रनाथ—'वह चाहे किसी के भी पास आए, किन्तु तुम इस समय मेरे पास आओ।'

मालती ने उनकी आज्ञा का पालन किया। तब उसके दोनों हाथ पकड़ कर सुरेन्द्र ने कहा—'मालती, और कितने दिन इस तरह व्यतीत करने होंगे ? इस तरह का हाल तो अच्छी आँखों से नहीं देखा जाता।'

मुँह दबाकर हँसती हुई मालती बोली—'आभूषण पहनने से क्या सुन्दरता बढ़ जायगी ?'

सुरेन्द्रनाथ—'तुम्हारे सौंदर्य की सीमा नहीं है। जो पास है उसे कोई बढ़ाएगा ही कैसे ? किन्तु कम-से-कम मेरी तृप्ति के लिए तो…'

मालती—'गहने पहनने होंगे ?'

सुरेन्द्रनाथ—'हाँ।'

मालती—'मैं पहन सकती हूँ लेकिन पहले यह बताओ कि मुझे गहने पहनाने का तुम्हें इतना शौक क्यों है ?'

सुरेन्द्रनाथ—'अगर मैं बतला दूँ वह बात तो तुम्हारे मन को दु:ख तो न होगा ?'

मालती—'बिलकुल नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ—'तो बतलाता हूँ, सुनो। तुम्हारी यह आभरणहीन मूर्ति बहुत ज्योतिर्मय है। तुम्हारे पास बैठा रहता हूँ, किन्तु मुझे ऐसा जान पड़ता है, एक अज्ञात भय एक क्षण के लिये भी मेरा पीछा छोड़कर नहीं हटता। इससे मुझे वैसा सुख नहीं मिलता। तुम्हें अलकार पहनाकर तुम्हारे तेज को कुछ मन्द कर लेना चाहता हूँ।'

मालती ने चुपचाप अपने सारे अंगों पर निगाह दौड़ाई। कमरे मे जो बड़ा-सा आइना टंगा हुआ था उसमे उसका सारा-का-सारा शरीर प्रफुल्लित हो उठा। उसे भी देखा उसने। उसने महसूस किया—शायद यथार्थ ही मेरे शरीर का वर्ण बहुत ही उज्ज्वल है, बहुत ही ज्योतिर्मय है। उसके मन में आया · मानो पुण्य की अतीत स्मृति अभी तक मेरे शरीर को छोड़कर गई नहीं, पवित्रता की छाया कदाचित् इस समय भी इस शरीर में जरा-जरा लगी है। रात्रि मे, शान्तमय कमरे में, मालती के मन में जरा-सा भ्रम उत्पन्न हुआ। उसने देखा, सामने दर्पण मे एक कलंकित देवमूर्ति है और उसकी बगल में जीवन के आराध्य सुरेन्द्रनाथ की कलंकहीन देवमूर्ति है।

विस्मय और आनन्द के कारण मालती ने आँखें मूँद ली।

दूसरे दिन ठीक सन्ध्या होने के बाद ही सुरेन्द्रनाथ ने नटवर मोहन के वेश मे मालती के मन्दिर मे दर्शन किया। गले में उनके फूलो के कई एक हार पड़े हुए थे और सब एक साथ जुड़कर इस तरह जान पड रहे थे मानो बेला, चमेली, जूही, इन्द्रबेला तथा अन्यान्य कितने ही फूलों की एक खूब मोटी-सी माला बनाई गई है। उन मालाओं के कारण उनका कण्ठ से वक्ष तक ढक गया था। एक हाथ मे वे फूल का एक तोड़ा लिए हुए थे और दूसरे मे मखमल से मढा हुआ एक बढ़िया-सा बक्स। पीताम्बर धारण किये हुए और पैरों मे मखमली जूते पहने हुए झूमते-झूमते वे मालती के सामने आकर खड़े हुए। उनका साज-शृङ्गार देखकर मालती

मुस्कराती हुई बोली—'यह कैसा रूप धारण कर रखा है तुमने आज ?'

सुरेन्द्रनाथ—'तुम्ही बतलाओ, कैसा है मेरा रूप ?'

मालती—'मैं तो नही बतला सकती।'

बाह्य गम्भीरता प्रदर्शित करते हुए सुरेन्द्रनाथ बोले—'पूजा करना आता है तुम्हे ?'

मालती—'हाँ, आता है।'

सुरेन्द्रनाथ—तो तुम्हारे घर में चन्दन है ! थोड़ा-सा चन्दन घिस लाओ और माथे में लगा दो। आज मेरा विवाह है।'

मालती—'किसके साथ ?'

सुरेन्द्रनाथ—'मैं जो कुछ कह रहा हूँ पहले वह करो, बाद को मालूम हो जायगा तुम्हे।'

मालती नीचे गई। वहाँ से चन्दन घिसकर ले आई और सुरेन्द्रनाथ के माथे पर उसने बहुत ही आकर्षक ढंग से लगा दिया। तब वह बोली—'अब बताओ।'

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'मालती, क्या अभी तक समझ नही सकी हो तुम यह बात ?'

अब सुरेन्द्रनाथ अपने गले से एक-एक माला निकाल-निकालकर मालती को पहनाने लगे। बाद को उन्होंने वह मखमल से मढ़ा हुआ बक्स खोला। उसमें से नाना प्रकार के जडाऊ आभूषण निकालकर उन्होंने मालती को यथास्थान पहनाये। मालती ने वैसे अलंकार जन्म-जन्मातर मे कभी देखे नही थे। विस्मित होकर वह देखती रह गई। अन्त में उसका मुख चुम्बन करके सुरेन्द्रनाथ बोले—'मैंने तुम्हारे साथ विवाह कर लिया। इतने दिनों के बाद आज तुम मेरी स्त्री हुई हो। अब तुम कही भागकर जा न सकोगी। जो माला आज मैंने तुम्हें पहनाई है उसे तुम जन्म-जन्मान्तर में भी गले से निकाल न सकोगी।'

दोनों की ही आँखों मे आँसू आ गये। दोनों के ही मुख से कुछ देर तक बात न निकल सकी। बाद को सुरेन्द्रनाथ आंसू पोंछकर बोले—'अब घर चलो, अपनी गृहस्थी का कार बार सम्भाल लो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि जीवन में तुम सदा सुखी रहो।'

सुरेन्द्रनाथ को प्रणाम करके मालती फिर उनकी बगल में बैठ गई। उसकी आँखों में आँसू आज बहुत बढ गये थे। सैकडो बार उसने आँखें पोंछी, लेकिन वे फिर भर आईं। उसके आँसू किसी तरह सूखते ही नही थे। सुरेन्द्रनाथ यह समझ गये। समझकर वे बोले—'मालती, क्या आज माता-पिता की याद आ रही है ?'

सिर हिलाकर मालती बोली—'हाँ।'

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'मेरी जो इच्छा थी उसकी पूर्ति में तुम स्वयं ही अन्तरीय हो उठी हो। मेरे मन में यह बात आई थी कि इस तरह नही रहूँगा मैं अब। तुम्हें जब पा गया हूँ तब खुलकर तुम्हारे साथ विवाह करूँगा और एक बार फिर गृहस्थ बन जाऊँगा। तुम्हारे माता-पिता को यही ले आऊँगा। उस अवस्था मे संसार मुझे चाहे कुछ भी कहे, लेकिन मैं स्वयं सुखी होऊँगा।' इतना कहकर सुरेन्द्रनाथ ने एक लम्बी साँस ली और बोले—'वह आशा तो अब दुराशा है। परन्तु क्या तुम अब घर चलोगी ?'

मालती बोली—'कहाँ ?'

'वही, अपने घर में। जहाँ मैं रहता हूँ।'

'यह क्या मेरा घर नहीं है ?'

'तो क्या वहाँ न चलोगी ?'

'नही।'

'ठीक यही बात मैं भी सोच रहा था।'

१४

यह बात सच है कि दु:ख के दिन देर से कटते हैं किन्तु कट जाते हैं वे, बने नही रहते। माधव की मृत्यु हो जाने पर शुभदा के भी बहुत से दिन कट गये। परिवर्तन के बिना संसार नही चलता, इस बात को सभी समझते हैं, समझते नहीं केवल शुभदा के सृष्टिकर्ता ! जन्म से लेकर आज तक शुभदा इस बात को सोचा करती। इस बात को सोचने वाले दूसरे

व्यक्ति थे श्री सदानन्द चक्रवर्ती। पास-पड़ोस के दस आदमी देखा करते। शुभदा स्नान करके घाट पर से जा रही है। पानी से भरी हुई कलश बगल में दबाये हुए धीर-मन्थर गति से काँपती चली जा रही है, घर का काम-काज कर रही है। लेकिन शरीर उसका होता जा रहा है दिन-दिन क्षीण। विषाद की रेखा एक क्षण के लिये भी उसके मुख पर से दूर नहीं होती।

मुहल्ले की जो बूढ़ी स्त्रियाँ थीं, वे शुभदा की दशा देखकर आह भरा करती थीं। कहतीं—'वह छोकरी बचेगी नहीं।' और जो उसकी हम-जाली थीं वे कहतीं—'इस तरह का भाग्य शत्रु का भी न हो।'

पीठ पीछे शुभदा के सम्बन्ध में सभी लोग आह भरा करते थे, परन्तु जब वह उपस्थित रहा करती तब उस प्रकार की बात मुँह से निकालने में उन सब को लज्जा आया करती थी। उन सबको महसूस होता कि यह आह भरने की बात शुभदा की मानसिक अवस्था के लिए शुभ नहीं है कोई और ही तरह का शब्द, जो संसार में नहीं है, जिसका प्रयोग कभी किसी ने किया नहीं, जिसका प्रयोग करने का आज तक कभी समय भी नहीं आया, वैसा कोई शब्द यदि मिल जाता तो वह प्रयोग करने के उपयुक्त बहुत कुछ हो जाता। इसलिए शुभदा के सामने कोई कुछ बोलता नहीं था, उसके आते ही सब लोग चुप हो जाया करते थे।

स्नान करते समय गंगा-तट पर उपद्रव करने का बच्चों को स्वभाव से ही अभ्यास हुआ करता है। वे प्रायः पानी के छींटे फेंका करते थे। उनके शोर-गुल और हँसी-ठट्ठे के कारण घाट पर बैठकर शिवजी की पूजा करने वाली प्रौढ़ाओं को मन्त्र भूल जाया करते थे। इसी प्रकार के और भी कितने ही उत्पात वे किया करते थे। लेकिन जिस समय शुभदा बहुत ही शान्त भाव से घाट पर पहुँची और एक किनारे पर सबसे दूर अपनी कलसी रखकर नितान्त ही अछूत, एक नीच जाति की स्त्री के समान पानी में प्रवेश करती तब बालक-बालिकाओं के मन में भी यह बात आ जाया करती थी कि इस समय कोलाहल न करना चाहिए, पानी के छींटे न फेंकने चाहिए। ऐसे अवसर पर तो चुप होकर, बहुत ही शान्त और सभ्य होकर माता या अन्य किसी आत्मीय का अञ्चल पकड़ कर खड़ा रहना चाहिए। अन्त में स्नान करके जब शुभदा चली जाती तब फिर उन

सब में पहले का भाव न आता।

शुभदा हँसना भूल गई थी। दुःख का भाव प्रकट करना भूल गई थी। रोने से उसे क्रोध आता, बीती हुई बातों पर विचार करने में लज्जा आती। आजकल घर बिलकुल सूना हो गया था। छलना ससुराल चली गई थी। रासमणि प्रायः सारे दिन घर में आया ही नहीं करती थी। और हाराण मुकर्जी! वे आजकल बहुत सीधे-सादे हो गये थे। दोनों समय वे घर आया करते, पहले की तरह कभी दो आना, कभी चार आना उधार माँग लेते और चले जाते। शुभदा दोपहर में रसोईघर के कच्चे फर्श पर अञ्चल बिछाकर जब लेटती तब से बराबर पड़ी ही रहती। संध्या होने पर वह फिर उठती। तब घाट पर जाती, दीपक जलाती, भोजन बनाती। एक थाल लेकर स्वामी के लिए रख देती, तब सदानन्द को भोजन कराती। फिर सबेरा होता, साँझ होती और रात होती।

प्रतिदिन की ही तरह शुभदा आज भी दोपहर के बाद रसोईघर में लेटी हुई थी। बाहर से पुरुष-कण्ठ से किसी ने पुकारा—'माँ जी!'

शुभदा के कानों में यह आवाज गई, लेकिन वह कुछ बोली नहीं। वह सोचने लगी—शायद कोई किसी को पुकार रहा है।

फिर वही आवाज आई—'माँ जी! क्या कोई घर में है?'

बाहर आकर शुभदा बोली—'क्या है?'

'मैं डाकिया हूँ। एक पत्र लाया हूँ।'

शुभदा बड़े आश्चर्य में पड़ी। यह सोचने लगी—चिट्ठी कौन लिखेगा? पास आकर बोली—'लाओ।'

'ऐसे नहीं पाओगी माँ जी। यह रजिस्ट्री चिट्ठी है। श्री शुभदा देवी के नाम से आई है। उन्हें हस्ताक्षर करने होंगे।'

शुभदा की समझ में रजिस्ट्री का अर्थ ठीक-ठीक न आ सका। वह बोली—'लाओ, मेरा ही नाम शुभदा है।'

डाकिया चिट्ठी देकर और रसीद लेकर चला गया।

भीतर जाकर उसने उसे खोलकर देखा। पचास रुपये के नोट उसमें रक्खे थे। शुभदा ने सोचा, यह पत्र और किसी का होगा। शायद डाकिये ने इसे मुझे भूल से दे दिया है। उसे बुलाने के लिए वह घर से निकली,

लेकिन डाकिया तब तक दूर निकल गया था। वह यहाँ की बहू थी, इससे चिल्लाकर पुकार न सकी। इससे नोट लेकर उसे स्वभावत भीतर लौट जाना पड़ा। वह सोचने लगी, जरा देर के बाद वह अपने आप दौड़ा आयेगा। परन्तु ऐसा हुआ नही। वह न तो उस दिन आया, न दूसरे दिन आया, तब शुभदा ने यह बात सदानन्द को बतलाई।

सदानन्द ने लिफाफे को ध्यानपूर्वक देखा। बाद को वह बोला—'भूल नहीं हुई। इस गाँव में आपके नाम की कोई और स्त्री नही है। साफ लिखा हुआ है—हाराण मुखोपाध्याय महाशय का मकान। चिट्ठी आपकी ही है। परन्तु कलकत्ता में आपका है कौन ?'

'कलकत्ता में मेरा तो कोई नहीं है।'

दूसरे दिन सदानन्द डाकघर मे आया। वहाँ पूछ-ताछ करके उसने मालूम किया कि रुपये कलकत्ता से अघोरनाथ बसु वकील ने भिजवाए हैं। आश्चर्यचकित होकर शुभदा बोली—'इस नाम के किसी भी व्यक्ति को मैं नहीं जानती।'

'तो फिर ?'

शुभदा—'तुम कोई उपाय करो।'

सदानन्द हँसकर बोला—'उपाय क्या करना है ? रुपये लेने की इच्छा अगर न हो तो इन्हें लौटा दीजिए।'

शुभदा—'भैय्या, जब साथ मे लड़का-लडकी थीं और उन सब को भूखों मरना पड़ता था तब भी शायद मैं ये रुपये न लेती। इस समय मुझे क्या दु:ख है जो मैं लेने लगी ? ये रुपये मेरे नही हैं, इन्हें तुम लौटा दो।'

कुछ सोच-विचार करने के बाद सदानन्द ने कहा—'मैं कलकत्ता जा कर पता लाऊँगा। ये रुपये अभी अपने पास रखिए। जब लौटाना होगा तब लौटा दीजिएगा।'

शुभदा—'तुम रुपये अपने साथ लेते जाओ। इसमें सोच-विचार करने की आवश्यकता नही है। इन्हें आँख मूंद कर लौटा दो। मुमकिन है, उन्होने और किसी के धोखे मे इन्हें मेरे पास भेज दिया हो।'

'जो कुछ होगा, वही जाकर निश्चय करूँगा।'

शुभदा—'वैसा ही करना।'

१५

अपने आफिस के खूब लम्बे-चौड़े कमरे में वकील बाबू अघोरनाथ वसु बैठे थे। सामने मेज की दूसरी बगल नारायणपुर के बाबू सुरेन्द्रनाथ बैठे थे। मेज के ऊपर मुकदमे के ढेर-के-ढेर कागज पत्र पड़े थे। एकाग्र मन से वे दोनों आदमी उन्हीं सब के मामले में सोच-विचार कर रहे थे।

इसी समय एक नौकर ने आकर कहा—'बाहर एक सज्जन खड़े हैं, वे आपसे मिलना चाहते हैं।'

नौकर के मुँह की ओर देखते हुए अघोर बाबू बोले—'कौन है ?'

'मैं पहचानता नहीं। देखने में कोई ब्राह्मण पण्डित-से जान पड़ते हैं।'

'तो जाकर कह दो कि अभी हमें फुर्सत नहीं है।'

नौकर कुछ देर बाद फिर लौटकर आया और बोला—'वे जाना नहीं चाहते। उनका कहना है कि मैं बहुत आवश्यक काम से आया हूँ।'

अघोर बाबू को और झुंझलाहट मालूम पड़ी। सुरेन्द्र बाबू के मुँह की ओर देखते हुए बोले—'तो क्या इसी कमरे में बुलवा लूँ ?'

'हानि क्या है ?'

नौकर को उन्होंने उसी आशय की आज्ञा दे दी। कुछ देर के बाद ही गौर वर्ण का एक खूब लम्बा-तगड़ा ब्राह्मण आकर खड़ा हो गया। गले में उसके जनेऊ था। सिर पर चोटी थी। लेकिन माथे पर तिलक या चन्दन-टिप्पा आदि कुछ नहीं था। वह धोती पहने था और शरीर पर एक अधमैला दुपट्टा डाले हुए था। उसके पैरों में जूते नहीं थे। घुटनों तक गर्द जमी हुई थी। वे दोनों ही आदमी उसे गौर से देखने लगे। अघोर बाबू ने कहा—'बैठ जाइए !'

पास की चौकी पर बैठकर ब्राह्मण ने कहा—'वकील साहब श्रीमान् बाबू अघोरनाथ वसु महोदय से......।'

'मेरा ही नाम अघोरनाथ है।'

ब्राह्मण—'तो आपसे ही मुझे काम है। मुझे जो कुछ कहना है वह क्या यहीं कहूँ ?'

अघोर बाबू—'बिल्कुल निश्चित होकर कहिए।'

अपने दुपट्टे के छोर से एक कागज निकालकर ब्राह्मण ने पूछा—'ये रुपये शुभदा देवी के पास क्या आपने भेजे थे ?'

उसे गौर के साथ देखकर अघोरबाबू ने कहा—'हाँ, मैंने ही भेजे थे।'

विस्मित होकर ब्राह्मण ने कहा—'हलुदपुर के श्री हाराण मुखोपाध्याय के पते पर ? उन्ही शुभदा देवी के नाम ?'

अघोरनाथ—'हाँ, उन्ही शुभदा देवी के नाम।'

ब्राह्मण—'किसलिए ?'

अघोरनाथ—'मालिक की आज्ञा से।'

ब्राह्मण—'मालिक कौन है ?'

सुरेन्द्र बाबू की ओर जरा-सा आँख का इशारा करके अघोर बाबू ने कहा—'यह बतलाने की आज्ञा मुझे नहीं है।'

ब्राह्मण—'तो ये रुपये आप वापस ले लीजिए। जिनके लिए आपने ये भेजे हैं वे इन्हें ग्रहण न करेंगी। आपको जानती नहीं। शायद आपके मालिक को भी न पहचानती होंगी। उन्होंने यहाँ मुझे इसलिए भेजा है कि मैं आपका पता लगाकर यह नोट वापस कर दूँ। हम लोग यह समझ रहे थे कि आपने भूल से किसी और के स्थान पर और का नाम लिख दिया था।'

अघोर बाबू हँसे ! वे बोले—'भूल वकील से नहीं होती।'

ब्राह्मण—'न होती होगी, लेकिन इसे आप वापस लीजिए।'

अघोर बाबू—'यह भी नही कर सकता। मालिक की आज्ञा के बिना मैं कुछ भी नही कर सकता।'

'तो उनसे पूछकर मुझे सूचना दीजिए। मैं और किसी दिन आकर दे जाऊँगा।' यह कहकर वह ब्राह्मण उठने लगा तो सुरेन्द्र बाबू ने छेड़कर उनसे पूछा—'श्रीमान् का शुभ नाम ?'

'मेरा नाम है सदानन्द चक्रवर्ती।'

सुरेन्द्रनाथ चकित हो उठे। कुछ देर तक मौन भाव से देखते रहने के बाद उन्होंने कहा—'श्रीमान् यहाँ कहाँ ठहरे हुए हैं ?'

सदानन्द—'कहाँ ठहरूँगा, अभी कुछ निश्चय नहीं है। मैं सीधे यहीं चला आया हूँ और शायद आज ही लौट जाऊँगा।'

सुरेन्द्रनाथ ने अघोर बाबू से कहा—'अच्छा तो अब मैं चलता हूँ, रात में फिर आऊँगा।' बाद में सदानन्द की ओर देखकर वे बोले—'मुझे आप से कुछ बातें करनी हैं?'

सदानन्द—'कहिए।'

सुरेन्द्रनाथ—'यहाँ नहीं। मेरा मकान पास ही है। यदि आपत्ति न हो तो वहीं चलने की कृपा कीजिए। वहाँ विस्तारपूर्वक बातें होंगी।'

सदानन्द को इसमे आपत्ति नहीं हुई। दोनों व्यक्ति आकर गाड़ी में बैठे। बैठने पर सदानन्द ने कहा—'इससे पहले भी कभी मैंने आपको देखा है, ऐसा तो मालूम नहीं पड़ता। किन्तु···किन्तु आपने मुझे कभी देखा है क्या?'

सुरेन्द्रनाथ—'जी नहीं, मैंने आपको कभी नहीं देखा लेकिन मैं आप को जानता हूँ।'

'तो आप किस प्रकार जानते हैं मुझे?'—सदानन्द ने आश्चर्य के साथ सुरेन्द्रनाथ की ओर देखा।

सुरेन्द्रनाथ—'मकान पर चलिए, वहीं बतलाऊँगा।'

कुछ ही देर मे गाड़ी आकर मकान पर पहुँच गई। सुरेन्द्रनाथ बाबू ने कहा—'मैं भी ब्राह्मण हूँ। भोजन का समय है। इससे यदि आप यहीं भोजन कर लें तो क्या कोई हर्ज है?'

'बिल्कुल नहीं।'

अन्त में दोनों आदमी भोजन करने बैठे तब सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'शुभदादेवी तो निर्धन हैं न?'

सदानन्द—'निर्धन तो हैं; किन्तु इसीलिए···।'

सुरेन्द्रनाथ—'समझ गया। इसलिए वे दान क्यों लेंगी, यही न?'

सदानन्द—'हाँ, शायद यही। विशेषत: ऐसी परिस्थिति में जब कि देने वाले का नाम तक न मालूम हो।'

सुरेन्द्रनाथ—'लेकिन इसमें हर्ज ही क्या है? जिसने दान दिया है वही कह रहा है कि मुझसे किसी तरह की भूल नहीं हुई। जान-बूझकर ही

उसने दान दिया है। सुपात्र को ही दान दिया है।'

सदानन्द—'लेकिन प्रश्न यह है कि वह दान दिया किसने है?'

सुरेन्द्रनाथ—'मान लीजिये कि अघोर बाबू ने ही यह दान दिया है।'

सदानन्द—'अघोर बाबू को क्या अधिकार है?'

कुछ संकुचित होकर सुरेन्द्रनाथ बाबू ने कहा—'दान करने का तो सभी को अधिकार है।'

सदानन्द—'हो सकता है। किन्तु क्या सभी आदमी वह दान ग्रहण कर सकते हैं?'

सुरेन्द्रनाथ—'नहीं, सभी आदमी नहीं ग्रहण कर सकते। लेकिन जिसका निर्वाह नहीं होता वह?'

इस बात से सदानन्द को गुस्सा आ गया। वह बोला—'इस तरह की शिक्षा ग्रहण किये बिना भी शुभदादेवी का निर्वाह हो जाता है।'

सुरेन्द्रनाथ—'आजकल शायद हो जाया करता होगा। लेकिन कुछ दिन पहले भी क्या हो जाया करता था?'

सदानन्द—'इस प्रश्न की आवश्यकता क्या है? इसके सिवा यह बात आपको मालूम कैसे हुई?'

सुरेन्द्रनाथ—'मुझे बहुत-सी बातें मालूम हैं। हाराण बाबू नौकरी नहीं करते। इसके विपरीत वे अपव्यय ही किया करते हैं। उनमें कई प्रकार के दोष भी हैं। वे अपने परिवार का पालन नहीं करते। दूसरे की सहायता के बिना क्या उनके परिवार के लोगों का खाना-कपड़ा चल सकता है?'

सदानन्द अब कुछ दुविधा में पड़ गया। तत्काल वह कोई उत्तर न दे सका।

सुरेन्द्रनाथ फिर बोले—'हाराण बाबू आजकल क्या किया करते हैं?'

सदानन्द—'कुछ भी नहीं।'

सुरेन्द्रनाथ—'मैं समझ गया। तो शायद आपकी ही सहायता से आजकल उनके घर का खर्च चल रहा है?'

सदानन्द—'भगवान की सहायता से चलता है। मैं तो स्वयं दरिद्र हूँ, निर्धन हूँ।'

सुरेन्द्रनाथ—'क्या छलना का विवाह हो गया ?'

सदानन्द—'हाँ हो गया।'

सुरेन्द्रनाथ—'कहाँ ? किसके साथ ?'

सदानन्द—'हमारे गाँव में ही। शारदाचरण राय के साथ।'

सुरेन्द्रनाथ—'माधव कैसा है ?'

सदानन्द—'अब वह जीवित नहीं है। उसे मरे बहुत दिन हो गये।'

सुरेन्द्रनाथ—'हाय ! अच्छा, उनकी बड़ी लड़की आजकल कहाँ है ?'

आश्चर्य में आकर सदानन्द बोला—'वह भी तो जीवित नही है अब ?

सुरेन्द्रनाथ—'जीवित नही है ! मरी कैसे ?'

सदानन्द—'गंगा जी में डूबकर उसने आत्महत्या कर ली थी।'

सुरेन्द्रनाथ—'यह कैसे मालूम हुआ ? क्या उसकी लाश मिली थी ?'

सदानन्द—'लाश तो नहीं मिली, लेकिन गंगा-तट पर उसकी साड़ी मिली थी। इसी से अनुमान होता है कि उसने आत्महत्या कर ली है ?'

सुरेन्द्रनाथ—'क्या सभी लोगों की यह निश्चित रूप से धारणा हो गई है ? किसी को इसमें सन्देह नहीं है ?'

कुछ देर तक दोनों ही आदमी चुप रहे। बाद को सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'अच्छा, मान लीजिए कि ये रुपये अगर उसी ने भेजे हों।'

सदानन्द—'वह कौन ? ललना ?'

सुरेन्द्रनाथ—'ललना कौन ? क्या उसका नाम ललना था ?'

सदानन्द—'हाँ।'

सुरेन्द्रनाथ—'अच्छा, मान लीजिए कि उसी ने अगर ये रुपये भेजे हों ?'

सदानन्द—'जो मर गई है उसने ?'

सुरेन्द्रनाथ—'हाँ, उसी ने। गंगा तट-पर उसकी साड़ी मिली है, इसी से यह निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि वह मर गई है। यदि वह अभी तक जीवित हो और ये रुपये उसी ने भेजे हों ?'

सदानन्द बहुत ही विह्वल हो उठा। कुछ देर तक मुँह नीचा किये हुये वह सोचता रहा, बाद को बोला—'नहीं, वह जीवित नही है। यदि वह जीवित होती तो पत्र अवश्य लिखती।'

सुरेन्द्रनाथ—'पत्र लिखने में अगर उसे लज्जा आती हो ?'

सदानन्द—'ललना को मैं जानता हूँ। वह कभी इस प्रकार का काम नहीं कर सकती जिसके कारण उसे लज्जा का सामना करना पड़े।'

सुरेन्द्र नाथ—'वह मरी नहीं, जीवित है। उसी ने रुपये भेजे हैं और प्रतिमास भेजती रहेगी।'

अपना माथा दबाकर सदानन्द ने कहा—'आपका शुभ नाम ?'

'सुरेन्द्रनाथ राय।'

'निवास ?'

'नारायणपुर।'

सदानन्द—'हाराण बाबू के सम्बन्ध की इतनी बातें आपको कैसे मालूम हुई ?'

सुरेन्द्रनाथ—'ललना ने बतलाई है।'

सदानन्द—'ललना ने नहीं बतलाई, वह तो मर गई है।'

सुरेन्द्रनाथ—'वह मरी नहीं है। सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही है।'

'वह स्वर्ग में होगी।' इतना कहकर सदानन्द उठकर खड़ा हुआ और बाहर आकर तेजी से चला गया।

सुरेन्द्र बाबू चिल्ला उठे—'थोड़ा-सा ठहरिये, मैं अभी आता हूँ। ठहरिए—दो बातें और कहनी है।'

'ललना से अगर मुलाकात हो तो कहना, सदा भैया ने उसे बहुत-बहुत आशीर्वाद कहा है।'

'उसकी माँ से कहिएगा...'

'हाँ, स्वर्ग चली गई है।'

सदानन्द धीरे-धीरे चला गया। वह फिर नहीं लौटा—नहीं लौटा।

उसके चले जाने पर सुरेन्द्रनाथ बड़ी देर तक मुँह बन्द किये हुए निस्तब्ध भाव से बैठे रहे। कुछ दिन पहले यदि इस तरह की घटना हुई होती तो शायद वे हँसते, लेकिन आज ! आज उनकी आँखों में आँसू आ गये। इतने में बाहर से पुकारकर नौकर ने पूछा—'बाबूसाहब, गाड़ी तैयार की जाय ?'

'हाँ, तैयार करो।' छिः! छिः! इस प्रकार का भी जहर मनुष्य अपनी इच्छा से खाता है।

१६

बहुत रात हो गई थी, तो भी मालती अपने कमरे में बैठी हुई सीता-वनवास पढ़ रही थी। बहुत रो चुकी, बहुत आँखें पोंछ चुकी थी। तो भी वह पढ़ रही थी। अहा, बहुत अच्छा मालूम पड़ रहा था, किसी तरह छोड़ने को जी नहीं चाहता था।

उसी समय बाहर द्वार के पास खड़े होकर मोटी आवाज से किसी ने पुकारा—'ललना!'

मालती काँप उठी। हाथ में जो सीता-वनवास नामक पुस्तक थी वह गिर पड़ी।

'ललना!'

मालती का अन्तस्तल तक काँप उठा। क्षीण कण्ठ से वह बोली—'कौन है?'

अब हँसते-हँसते भीतर प्रवेश करके सुरेन्द्रनाथ ने फिर पुकारा—'ललना!'

'तुम हो?'

'हाँ, मैं हूँ। लेकिन तुम्हारा भेद खुल गया। तुमने अपना असली नाम क्यों छिपाया था?'

'कहाँ?'

'फिर झूठ बोल रही हो?' उसके सूखे हुए अधर-पल्लव का चुम्बन करके सुरेन्द्र नाथ ने कहा—'मैं सब सुन आया हूँ। पहले तुम ललना थी, अब मालती बन बैठी हो।'

'कहाँ सुना? कलकत्ते में तो कोई मुझे जानता नहीं!'

सुरेन्द्रनाथ—यह तो ठीक है कि कलकत्ते में तुम्हें कोई नहीं जानता लेकिन जो जानता है, वह हलुदपुर से आया था।'

'मालती—'कौन आया था ?'

सुरेन्द्रनाथ—'तुम्हारे सदा भाई आये थे, वही नोट लौटाने के लिए अघोर बाबू के पास।'

मालती—'नोट लौटाने के लिए ?'

सुरेन्द्रनाथ—'हां।'

मालती—'सदा भाई ?'

सुरेन्द्रनाथ—'हां, वही।'

मालती चुप बैठी रही।

कुछ देर के बाद सुरेन्द्रनाथ ने कहा—'बोलती क्यों नहीं हो।'

'मालती—'कैसे हैं सदा भाई ?'

सुरेन्द्रनाथ—'अच्छी तरह है। तुम्हारी मां भी अच्छी तरह हैं। उनकी हालत अब बुरी नहीं है, इसलिए वे तुम्हारा दान ग्रहण न करेंगी। सदानन्द बाबू ने उनकी दशा बदल दी है।'

मालती—'मेरा नाम ललना है, यह बात कैसे मालूम हुई तुम्हें ?'

सुरेन्द्रनाथ—'सदानन्द ने बतलाया। वे सब यही समझते हैं कि जल में डूबकर तुमने आत्महत्या कर ली।'

मालती ने एक लम्बी सांस ली।

सुरेन्द्रनाथ—'लेकिन मैंने बतला दिया कि तुम जीवित हो और सुख से हो।'

मालती—'यह क्यों बतलाया ?'

सुरेन्द्रनाथ—'तो क्या मैं झूठ बोलता ? तुम जीवित भी हो और जहां तक समझता हूं, सुखी भी हो। क्या सुख में नहीं हो तुम ?'

मालती—'हूं। लेकिन यह बात क्या सदा भाई ने पूछी थी ?'

सुरेन्द्रनाथ—'नहीं, मैंने स्वेच्छा से बतलाया था और तुम्हारी मां से भी बतलाने को कह दिया है।'

मालती—'मैंने ही रुपए भेजे थे, क्या यह बात भी कह दी तुमने ?'

सुरेन्द्रनाथ—'हां, कही तो है।'

मालती—'तुम मुझे बदनाम कर आये हो। वह पागल आदमी है, यह बात गांव भर में कहता फिरेगा। उन लोगों के लिए जब मैं मर ही

चुकी थी तब झमेला खड़ा करने के लिए मुझे क्यों जिन्दा कर दिया ?'

दुःखित भाव से सुरेन्द्रनाथ मुस्कराए। बाद को वे बोले—'जिसको तुम पागल समझती हो वस्तुतः वह तिल भर भी पागल नहीं है। सम्भव है, किसी समय वह पागल रहा हो, लेकिन उसके वे दिन अब बीत चुके हैं। उसके द्वारा हलुदपुर में तुम कभी जीवित न हो सकोगी। तुमने जब अपने आपको छिपा रखा है तब वह कभी इस बात को प्रकट न करेगा।'

मालती—'तुम्हें यह कैसे मालूम हुआ ?'

सुरेन्द्रनाथ—'मैंने मालूम कर लिया। जब मैंने उससे तुम्हारी माँ से यह कह देने को कहा कि तुम जीवित हो तब वह बोला—ललना कभी लज्जाजनक काम न करेगी, वह कभी अपने आपको छिपाएगी नहीं। वह अब जीवित नहीं है, वह मर गई है। मैंने उससे कहा—सदानन्द बाबू, जरा और ठहरिये उस ने कहा—मैं आज जा रहा हूँ। उससे जब कभी मुलाकात हो तब कहना कि तुम्हारे सदा भाई ने तुम्हें बहुत-बहुत आशी-र्वाद कहा है। मालती मैंने यह अच्छी तरह अनुभव कर लिया है कि जो जहर मैंने खाया है वही जहर उसने भी खाया है। मेरे लिए वह अमृत के रूप में बदल गया है और उसके लिए प्राण-संहारक सिद्ध हुआ है।'

मालती मुँह नीचा किये हुए बातें सुन रही थी। उसके मन में आ रहा था कि खूब जी भरकर रोऊँ। लेकिन उसे रोने में लज्जा आ रही थी।

'एक शुभ समाचार और है। तुम्हारी .छलना की शादी हो गई है।'

'कहाँ ? किसके साथ ?'

'उसी गाँव में। कोई शारदाचरण है, उन्हीं के साथ।'

मालती समझ गई। उसने मन-ही-मन उसे हजार बार धन्यवाद दिया। वह बोली—'अगर कोई विवाह करेगा तो वही करेगा, यह मैं कुछ-कुछ जानती थी।'

सुरेन्द्रनाथ—'यह कैसे जानती रही हो तुम ? क्या पहले से कुछ बात-चीत चल रही थी ?'

मालती—'नहीं, बातचीत नहीं चल रही थी। लेकिन मैंने ही एक बार उससे अनुरोध किया था कि छलना के साथ तुम विवाह कर लो। लेकिन उस समय पिता के भय से मेरी बात मानने के लिए तैयार नहीं

इधर सदानन्द लौट आया । रास्ते में वह बहुत ही अन्यमनस्क होकर चल रहा था। कहीं बाहर से आते देखकर किसी ने उसे पुकार-कर पूछा—'भाई साहब, किधर से ? कहाँ गये थे ?' भाई साहब सिर हिलाकर बोले—'हूँ।' सदानन्द खड़ा हो गया। प्रश्नकर्त्ता कि मुँह की तरफ देखकर वह बोला—'घर जा रहा हूँ।' इतने मे उस आदमी के झुण्ड की एक गाय एक आदमी के बैंगन के खेत की तरफ बढ़ने लगी। गालियाँ देते-देते वह गाय के पीछे दौड़ा। इधर सदानन्द ने भी अपना रास्ता लिया। बाद को गाय को लौटाकर जब उसने फिर झुण्ड में कर दिया तब वह कहने लगा—'इस पागल का मन आज वैसा प्रसन्न नहीं मालूम पड़ता, लेकिन आदमी मजे का है।'

रामू मामा नन्द हलवाई की दुकान वाले घर की चौखट में पीठ लगाये हुए तम्बाकू पी रहे थे। पैरों में धूल लपेटे हुए सदानन्द को कहीं से आते देखकर वे बोले—'ओ सदानन्द, चार-पाँच दिन से मैंने तुम्हें देखा नहीं। तुम कहाँ थे ?'

उनकी तरफ मुँह फेरे बिना ही पीछे की तरफ अंगुली से इशारा करके सदानन्द ने कहा—'वहाँ।'

'कहाँ ? ब्राह्मणपाड़ा में ?'

'हूँ।'

'इतने दिन तक !'

'हूँ।'

सदानन्द तेजी से पैर बढ़ाता हुआ चला गया। रामू मामा भी झुँझ-लाकर बोले—'धत्, क्या कहता है, कुछ समझ मे नही आता।'

रामू मामा की यह बात सदानन्द के कानों तक पहुँच पाई थी या नहीं यह तो नही कहा जा सकता, किन्तु वह सीधे शुभदा के पास जाकर उपस्थित हुआ। उसके सामने नोट रखकर वह बोला—'कोई पता नहीं चला।'

शुभदा बोली—'तो बेकार तुम्हें इतना कष्ट हुआ।'

सदानन्द चुप रहा।

शुभदा फिर बोली—'तो ये रुपए क्या किये जायँ ?'

सदानन्द—'जो आपकी इच्छा हो। अगर आप चाहें तो इन रुपयों को फेंक दें और जी चाहे तो रख लें। जब कभी पता चलेगा, वापस कर दीजिएगा।'

विवश होकर शुभदा ने उन नोटों को सन्दूक में रख लिया।

सदानन्द ने पूछा—'हाराण काका कहाँ हैं ?'

बगल वाले कमरे की तरफ इशारा करके वह बोली—'लेटे हैं।'

'कही गये नहीं ?'

'गये थे, अभी-अभी लौटकर आये हैं।'

उस दिन शाम को बड़े जोर से आँधी आई। पानी भी बरस गया। शुभदा ने सवेरे-सवेरे भोजन बना लिया। भोजन-वगैरह से निवृत्त होकर हाराण बाबू ने कहा—'कुछ पैसे दो।'

'आज अब कहीं न जाओ। आसमान पर बादल घिरे हुए हैं। रात में अगर कही पानी बरसने लगा तो…?'

'तो होगा क्या ?'

'तो लौटकर आने में कष्ट होगा।'

'कुछ भी कष्ट न होगा। आज कई काम है। जाना ही पड़ेगा।'

काम जो थे वे शुभदा को मालूम थे। तो भी वह बोली—'आज एकादशी है। दीदी की तबीयत खराब है। वे बेहोश पड़ी हैं।'

हाराण बाबू ने ये बातें नही सुनी। टेंट में पैसे खोंसकर, सिर पर छाता लगाकर, हाथ में स्लीपर लेकर और धोती की लाँग खोंसकर पानी और कीचड़ मे निकल पड़े। एक लम्बी साँस लेकर शुभदा बोली—'स्वामी!'

आखिर में शुभदा का अनुमान ठीक ही निकला। पहर भी रात न बीत पाई कि फिर पानी बरसने लगा। आज-कल शुभदा को प्रतिदिन ही रात में थोड़ा-थोड़ा बुखार हो आया करता था। लेकिन यह बात किसी से कहना तो दूर रहा, इसे वह एक तरह से अपने आपको भी नही जानने देती थी। रात में उसे ठंड देकर बुखार आता तभी उसे याद हो आता।

पानी बरसने के साथ-ही-साथ शुभदा को जाड़ा मालूम पड़ने लगा। हाथ के पास जो भी वस्तु मिली उसको खींचकर वह ओढ़ने लगी। बड़ी रात को उसे कुछ-कुछ नींद आई। उस वक्त भी पानी बरस रहा था, लेकिन वह बहुत कुछ कम हो गया था। शुभदा का शरीर तो बहुत शिथिल हो ही गया था; साथ ही उसे कुछ आलस्य भी आ गया था। इसी बीच में

उसे ऐसा जान पड़ा, मानो कोई दरवाजा ठेलकर साँकल को खोलने का प्रयत्न कर रहा है। उसके बाद ही खट से द्वार खुल गया। कमरे के भीतर चिराग जल रहा था। शुभदा की आँख खुल गई थी। उसने ताककर देखा तो एक आदमी कमरे में घुस रहा था। हाथ में वह बाँस का एक लट्ठ लिये था, मुँह तथा शरीर के अन्य समस्त अंगों में स्याही पोते हुए था और ऊपर से जरा-जरा दूर पर सफेद ठिप्पे लगाये हुए था। काँपती हुई शुभदा चिल्ला पड़ी—'कौन है ? कौन भीतर घुस रहा है?'

'चुप !'

इस वज्र के समान गम्भीर स्वर ने शुभदा के हृदय में इतना अधिक भय पैदा कर दिया कि उसे आँख खोलने की हिम्मत ही न हुई।

लट्ठ से दो बार ठक-ठक करने के बाद वह आदमी शय्या के पास आ गया और बोला—'अपने बक्स की कुन्जी दो।' गला बहुत मोटा था, भारी था। एकाएक सुनने पर ऐसा जान पड़ता था, मानो यह आदमी प्रयत्न करके भारी आवाज से बोल रहा है।

शुभदा कुछ बोली नहीं।

उस आदमी ने फिर एक बार कमरे के फर्श पर लट्ठ से खट से आवाज करके कहा—'कुन्जी लाओ, नहीं तो गला घोंटकर मार डालूँगा।'

अब शुभदा उठकर बैठ गई। तकिये के नीचे से कुन्जियों का गुच्छा निकालकर उसने फेंक दिया। बाद को वह बोली—'मेरे बड़े बक्स में दाहिनी तरफ के खाने में पचास रुपये के नोट हैं, वही लेना। बाईं तरफ विश्वनाथ जी का प्रसाद रक्खा हुआ है, उसे न छूना।' जिस प्रकार शान्त भाव से उसने ये सब बातें मुँह से निकाली उससे यह नहीं जान पड़ रहा था, कि उसे तनिक भी डर है।

चूना और स्याही शरीर में पोते हुए जो आदमी आया था उसने बड़ा बक्स खोला। बाईं तरफ उसने बिल्कुल हाथ ही नहीं लगाया। दाहिनी तरफ के खाने से नोट निकाल उन्हें टेंट में खोंस लिया। शुभदा के कहने के अनुसार उसने जिस प्रकार स्वच्छन्द रूप से बक्स खोला और दाहिनी तरफ का खाना खोज लिया उससे मालूम हो रहा था कि वह सब उसका समझा-बूझा है।

वह आदमी जब जाने लगा तब एक लम्बी साँस लेकर शुभदा ने आहिस्ता से कहा, 'शायद नोट में नाम लिखा हुआ है, नम्बर भी पड़ा हुआ है, इसे जरा सावधानी से खर्च करना।'

शरत—साहित्य (उपन्यास)

श्रीकान्त
चरित्रहीन
विप्रदास
कमला
देनापावना
लेनदेन
विजया
समाज का अत्याचार
शरत के नाटक (नाटक)
देवदास
बड़ी दीदी
ब्राह्मण की बेटी
बिराज बहू
सविता
शेष का परिचय
गृहदाह
शेष प्रश्न
पथ के दावेदार
शुभदा
मझली दीदी